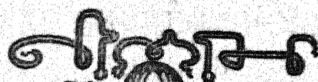
बया का घोंसला और साँप

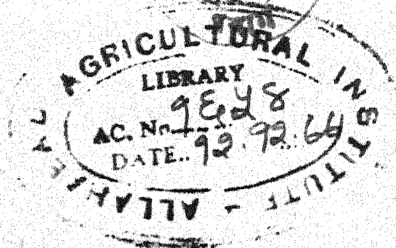
लक्ष्मीनारायण लाल





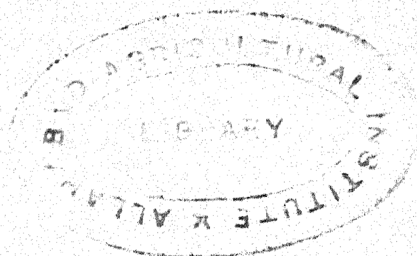
प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता ५, खुसरू बाग रोड, इलाहाबाद, १

[redacted] रुपये [redacted] आने



प्रकाशक
नीलाभ प्रकाशन गृह, ५ खुसरो बाग़ रोड, इलाहाबाद १.
मुद्रक
जॉब प्रिंटर्स, ६६, हिवेट रोड, इलाहाबाद।

बया का घोंसला और साँप



सिकन्दरपुर से रामनगर की राह पर,
घनी अमराई के उस पार
टीले के समीप,
ताड़-वृक्षों पर झूलते हुए बया के सूने घोंसले
जानते हैं
कि मैं ने उस साँप को देखा है;
जिस का विष उस की आँखों में था।





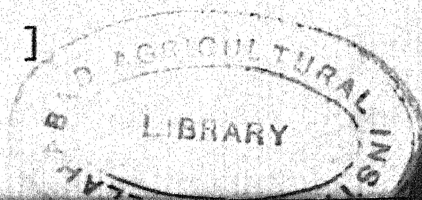
विकास

१

जब उस टीले के पीछे दिन डूबने लगेगा, तब इस दूर तक फैली हुई अमराई की क्या शोभा होगी ! आनन्द कल्पना करने लगा—केवल पेड़ों की हरी-मुलायम चोटियाँ सुनहरी हो जायँगी, फिर सूरज की अंतिम किरने इन हरी चोटियों में इस तरह मिल जायँगी; जैसे, कोई गीतों भरी मुस्कान धीरे-धीरे लाजवन्ती के सुनहरे घूँघट में खो गई हो।

और टीले के उस पार ?

जहाँ, दूर तक ताड़ के वृक्ष खड़े हैं, जिनके परिपार्श्व में अरहर और ऊख की लहलहाती हुई हरी खेती है। वहाँ उस पार तब ऐसा लगेगा, जैसे, टीले पर से कोई मस्त बाँसुरी बजाता हुआ उन हरे खेतों में आकर छिप गया हो और कोई पायल बजाती हुई उसे ढूढ़ने के लिए खेत के मेड़ों पर बेक़रार चक्कर लगा रही हो। वह बाँसुरी की तान, वह पायल का संगीत, दोनों आपस में मिलकर धीरे-धीरे तब ऊपर उड़ने लगेंगे, और ताड़ के शिखरों पर छा जायँगे, फिर सुनहरे होंगे, भूरे होंगे और



कुछ ही क्षणों में वे वहाँ से अपने सुनहरे पंख खोलकर उड़ जायँगे।

आनन्द का घोड़ा पश्चिम की ओर बढ़ रहा था—वह ऊँचा टीला, वह घनी अमराई, वे हरे खेत और वे ताड़ के ऊँचे-ऊँचे वृक्ष सब शान्त थे। लेकिन ताड़ के वृक्ष भी शान्त थे!

आनन्द जब उनके नीचे से गुजरने लगा तब उसे एकाएक आश्चर्य हुआ। उसने सर उठाकर देखा—ताड़ के पत्तों में बया के असंख्य घोंसले लटक रहे हैं। लेकिन ये घोंसले शान्त क्यों हैं? बसेरा का समय हो गया है, फिर तिनके के इन राजमहलों के राजा-रानी कहाँ हैं? उनके चीं-चीं करते हुए राजकुमार कहाँ हैं! आनन्द फिर अनुमान लगाने लगा। शायद उस टीले से उतरकर कोई विषैला साँप ताड़ के इन वृक्षों के पास आया होगा। उसने फन उठाकर अपनी ज़हरीली जबान कँपाई होगी और उसकी आँखों की छाया इन घोंसलों पर पड़ी होगी। फिर वे बया पक्षी अपने इन महलों को छोड़कर यहाँ से उड़ गए होंगे। तिनकों के खडहरों को हवा में झूलते हुए छोड़कर वे यहाँ से उड़ गए होंगे और वे उस देश चले गए होंगे जहाँ आज का सूरज जा रहा होगा।

"आप बहुत चुप रहते हैं सरकार! हरदम कुछ सोचते रहते हैं क्या?" घोड़े के पीछे चलते-चलते सरजू ने एकाएक पूछा।

आनन्द ने पीछे मुड़कर सरजू को देखा पर वह कुछ बोला नहीं।

"ठीक है सरकार!" सरजू ने संकोच पूर्ण शब्दों में कहा, "मुझसे आप क्या बातें कर सकते हैं! मैं ज्यादा से ज्यादा गाँव-घर की बेमतलब की बातें करूँगा, आप तो सरकार......।"

संकोच से सरजू की वाणी रुक गयी और वह कुछ क्षणों के लिए चुप रहा। लेकिन उससे इस तरह देर तक न रहा गया। उसने फिर कहा, "सरकार, बिला कुछ बोले-चाले रास्ता नहीं कटता, और सरकार अभी रामनगर यहाँ से पक्के दो कोस है।"

आनन्द ने घोड़े की रास में एक झटका दिया और उसने ताड़-वृक्षों की ओर संकेत करते हुए पूछा, "उन घोसलों में पंछी नहीं बसते क्या सरजू?"

"लटकते हुए उन बया के घोसलों में सरकार!" सरजू ने बड़े मनोयोग से कहा, "बया तो बड़े मस्त पंछी होते हैं सरकार! एक-एक तिनका जोड़ कर घर बनाते हैं, उनमें गीत गाते हैं, फिर उन्हें छोड़ कर उड़ जाते हैं!"

"कहाँ उड़ जाते हैं?" आनन्द ने बालकों की तरह पूछा।

"न जाने कहाँ उड़ जाते हैं सरकार!"

"फिर वे गीत किसके लिए गाते हैं!" आनन्द अपनी दुश्चिन्ताओं से हटता हुआ जैसे, विनोद का प्रयत्न करने लगा।

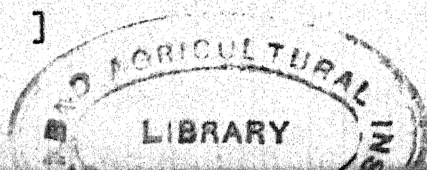
"मुझे क्या मालूम सरकार!"

सरजू चुप हो गया। आनन्द फिर सोचने लगा—पंछी निर्लिप्त निरासक्त होते हैं, इसलिए सुखी रहते हैं। वे आकाश में अधिक रहते हैं इसलिए गीत बहुत गाते हैं। और इसलिए भी गीत बहुत गाते हैं, क्योंकि उन्हें यह पता ही नहीं कि वे गीत गाते हैं।

सरजू ने एकाएक फिर टोका—"सरकार, आप फिर चुप हो गए!"

आनन्द ने अपना सर घुमाया, सरजू को देखकर वह हँसने का प्रयत्न करने लगा। लेकिन उससे हँसा न गया, और वह पश्चिम की ओर देखने लगा। सूरज डूब रहा था। उसने मुड़कर देखा—अमराई, टीला, हरे खेत, ताड़ के वृक्ष; जिनके शिखरों से सचमुच, जैसे, सुनहरे पंछियों के झुंड-के-झुंड अब उड़ने ही वाले हैं, उड़ने ही वाले हैं, उड़ रहे हैं—उड़ चुके हैं!

आनन्द का घोड़ा अब तेजी से अपने रास्ते पर बढ़ने लगा। साँझ घिरती आ रही थी और उसके धुँधलके में धीरे-धीरे उसकी उदासी चारो



ओर फैलती जा रही थी।। दूर-दूर के गाँव धुएँ के परदों में ढकने लगे थे। मैदान उदास हो चले थे। हरी ऊख के खेतों से ताजी मधु की-सी सुगन्धि आ रही थी और अरहर के खेतों से हरेपन में डूबी हुई धरती की सोंधी-सोंधी खुशबू चारो ओर फैल रही थी।

जुते-कमाए हुए खेतों की धरती मुलायम और साफ़ थी। उसमें आनन्द के घोड़े की खुर बार-बार धँसती जाती थी और घोड़ा हिन हिना उठता था। वह घोड़े को सँभालता और दूर किसी गाँव में जलते हुए मिट्टी के चिराग़ को देखने लगता। परती-ज़मीन घासों से पटी थी और उस पर चलता हुआ आनन्द का घोड़ा मुँह-नाक और जबड़े की एक साँस से इतनी जोर का 'फुर्...र' की आवाज़ करता था कि जिससे घास के छोटे-छोटे कीड़े-बोके, तितिलियाँ और मेंढक के बच्चे आदि बुरी तरह से डरकर भाग निकलते थे।

सीतापड़ाव पार करने के बाद आनन्द का घोड़ा लकड़मंडी वाली सड़क की ओर बढ़ रहा था। गोधूलि बीत चुकी थी, लेकिन रात का अँधेरा चौथ की चाँदनी के कारण आकाश से नीचे नहीं उतर सका था। सरजू अब आनन्द के घोड़े के आगे-आगे चल रहा था। और आनन्द को बेतरह चुप-उदास पाकर वह भी जैसे; उसके समर्थन में उसी तरह चलता जा रहा था। कुछ देर के बाद वह अपने-आप कहने लगा, "क्या जमाना आ गया है सरकार!...ओ हो...हो ..। इसे तो धँस जाना चाहिए!......रामनगर की तो हाल ही न पूछिए। अजीब क़स्बा है सरकार। मैं चार साल से तहसीलदार साहब के साथ हूँ, लेकिन मैं तो नह-नह पक गया। न जाने कैसे लोग हैं यहाँ के! न किसी का दु ख जाने न दर्द, बस अपनी-अपनी घात! सरकार तो हमारे लिए अस्पताल खोलती है, लेकिन सरकार, यहाँ अच्छे डाक्टर क्यों नहीं आते!...यहाँ वह जो चड्ढा डाक्टर है न, बड़ा अपराधी है। मेरी चले

तो मैं बेइमान का गला काट दूँ !"

आगे सरजू कुछ क्षणों के लिए चुप हो गया, फिर घूमकर उसने नम्रता से पूछा, "क्या सोच रहे हैं सरकार ?"

"कुछ नहीं !" आनन्द ने सर हिलाया।

कुछ दूर तक दोनों चुपचाप चलते रहे। सरजू आनन्द के शान्त-मौन रूप से कुछ-कुछ परिचित था। उस खामोशी के पीछे द्वन्द्व का क्या रूप है, किसकी भयानक छाया है ! उसे सब पता था, इसलिए सरजू बार-बार प्रयत्न करता था कि आनन्द सरकार कुछ बोलें; उनका मन कहीं और चला जाय। इसीलिए सरजू के मन में जो बात अपनी अभिव्यक्ति पाने के लिए आँधी बन रही थी, उसे वह क़रीने से पीता चल रहा था और वह आनन्द की खामोशी को किसी और दिशा में ले जाकर तोड़ना चाहता था।

"लखनऊ तो अच्छी जगह होगी सरकार, ...है न !"

आनन्द ने जैसे कुछ सुना ही नहीं। वह अपने द्वन्द्व और चिन्तन में इतना आत्मसात था कि, जैसे; घोड़े की पीठ पर मात्र उसका शरीर बैठा था। और वह, वह स्वयं कहीं और गया हुआ कोई फैसला सुन रहा था।

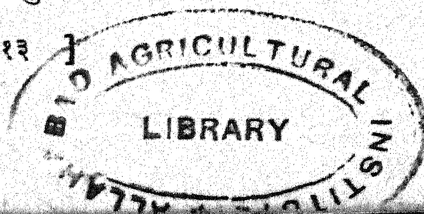
उसके हाथ में घोड़े की लगाम बिल्कुल ढीली पड़ गयी थी। सरजू ने देखते ही, दौड़कर उसे सम्हाल लिया।

"सरकार सो रहे हैं क्या ?"

"नहीं तो !" आनन्द ने जैसे, जगते हुए कहा, "क्यों क्या हुआ ?"

"जरा सँभल कर लगाम पकड़े रहिए सरकार, अंधेरा है और जानवर का मामला !"

सरजू अब आनन्द के बराबर से चलने लगा। आनन्द न जाने क्यों, किस बात से, स्वयं अपने आप पर झुँझला उठा।



"कुछ बात करो सरजू !" आनन्द ने उदासी से कहा।

"मैं तो सरकार करता ही चला आ रहा हूँ," उसने असीम प्रसन्नता से कहा, "लेकिन आप तो सरकार......!"

"मेरी छोड़ो, कुछ अपनी कहो !" आनन्द ने मुस्करा कर कहा। सरजू का मन सन्तुष्ट हुआ, उसने तत्काल पूछा, "सरकार, लखनऊ में आपका ननिहाल है न !"

"उसे मेरा घर कहो सरजू !" आनन्द ने कहा "माता जी के देहान्त के बाद, नाना जी मुझे गोंडा से लखनऊ—अपने पास ले गये और उन्होंने बच्चे के रूप से मुझे वहाँ इस रूप बनाया।" यह कहकर आनन्द रुक गया, और जल्दी से उसने पूछा, "रामनगर अभी बहुत दूर है क्या !"

सरजू ने उत्साह से उत्तर दिया, "नहीं तो सरकार ! बिलकुल पहुँच गए। सामने देखिए, वह चन्दाताल है न ! और वह लकड़मंडी वाली सड़क है। बस, अब तो रामनगर दो ही मील रह गया सरकार !"

दीनूटोला पार करते ही आनन्द का घोड़ा लकड़मंडी वाली सड़क पर आ गया। सरजू ने विश्राम की एक लम्बी साँस ली और अपने आप से उसने कहा, "अपने राम तो एक बीरा सुरती खाएँगे।" यह कह कर वह हथेली में कच्ची सुरती बनाने लगा और आनन्द की ओर आँख नचाकर कहने लगा, "सरकार ! आप तो कुछ खाते पीते ही नहीं, पान तक नहीं खाते !"

आनन्द सरजू की बातों की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं दे रहा था। उसका घोड़ा सड़क से बढ़ रहा था और वह सड़क से बायीं ओर देखता हुआ कुछ और सोचने लगा था। वह चन्दाताल कितना लम्बा चौड़ा है। उसके फैलाव में जैसे, कोई संकोच नहीं है, लेकिन फिर भी वह कितना सूना-उदास है। लखनऊ शहर के किनारे अगर वही तालाब होता तो

उसकी कितनी अपार पूजा होती ! उसके किनारे लखनऊ का नैनीताल बसता, या उससे बिजली तैयार की जाती। लेकिन इस सड़क के किनारे पड़ा हुआ चन्दाताल कितना ग़रीब है।

ठीक उसी समय तालाब से सारस का जोड़ा बोल उठा—'क्रौं... क्रौं...कुँ...क्रुँ।' क्यों, क्यों ? क्या...क्या ? सारस की बोली में, जैसे ये प्रश्न, ये विरोध तालाब से फैलते हुए आनन्द के पास आए और उसके चिन्तन की दिशा बदल गए और आनन्द का भावुक मन सोचने लगा, चन्दाताल अपने में धनी है। मनुष्य जब उसमें हाथ लगाएगा, तब वह ग़रीब अवश्य हो जायगा। तब न उसमें जंगली घास, न जलकुंभी, न सैवाल होगा, फिर उसमें इतनी मछलियाँ न होंगी। उसमें कमल के फूल और कुमुदनी की ढोढ़ियाँ न होंगी। क्योंकि मनुष्य वहाँ विहार करने लगेगा और जब वहाँ मनुष्य की कोठियाँ होंगी, तब वहाँ तालाब के पंछी न होंगे—मुर्ग़, तीतर, सुर्खाब, सैनाह, बत्त, कौआरी, लालसर और सारस के जोड़े न होंगे। तब तालाब के इन पक्षियों को भी उसी देश उड़ जाना होगा जहाँ ताड़-वृक्ष के वे बया-पंछी उड़ गए होंगे।

आनन्द अपने आप में उलझा हुआ, चुप-निश्चेष्ट चल रहा था। सरजू कोई बात अवश्य करता चल रहा था, लेकिन आनन्द का ध्यान उधर बिल्कुल न था। उसका मन अब सूनी सड़क के दोनों ओर फैले हुए हरे मैदान के विस्तार पर बहुत तेज़ी से दौड़ रहा था। ये हरे खेत, यह अछूती-कुआँरी धरती, ये जोते हुए खेत, ये काले-काले गाँव, यह झुका हुआ आकाश और यह शून्य, जिसे भेदता हुआ उसका घोड़ा चला जा रहा था—भागता जा रहा था और आनन्द अपने अंत:क्षितिज में देखता जा रहा था। यह राम नगर है—एक छोटा-सा क़स्बा। यह तहसीलदार, कामता प्रसाद जी हैं—मेरे पिता। यह उनकी



हवेली है। यह मैदान-सा चौड़ा आँगन, और यहाँ प्रभा माता जी रोते हुए नन्हें को अपनी गोद में लिए हुए पलँग पर लेटी हैं। नन्हा सो नहीं रहा है और प्रभा जी उसे सुलाने के प्रयत्न में हैं। बरामदे में गीता तस्वीरों से भरी हुई कोई किताब उलट-पुलट कर देख रही है। उस की घुँघराली अलकें बार-बार उस के मुँह तक आ जाती हैं और वह हर दो क्षणों के बाद अपने सर को इतनी तेज़ी से ऊपर झटकती है कि बहँकी हुई अलकें अनायास कुछ क्षणों के लिए उस के सर के घुँघराले बालों से सिमट जाती हैं। चौके में एक ओर रत्ती बैठी हुई आँटा गूँथ रही है और दूसरी ओर आग के सामने विधवा पारो बुआ बैठी खाना बना रही है। बुआ पसीने से तर है और वह बार-बार अपने सूते-सफेद आँचल से मुँह के पसीने को पोंछती हुई सोच रही है—हाय! अब तक नन्दू नहीं आया! वह चौके से उठती है और बाहर दरवाजे पर आकर सामने सड़क की ओर देखने लगती है—नन्दू अभी नहीं आया। दरवाजे पर छप्पर की बारहदरी में तहसीलदार साहब बैठे हैं। सामने फर्शी ताव पर है। उन के चारों ओर लोगों की एक भीड़ बैठी है। तहसीलदार साहब हँस रहे हैं, बातें भी कर रहे हैं और बीच-बीच में वे फर्शी की नली से कश भी लेते जा रहे हैं और यह दबे-पाँव सुभागी आ रही है, नीचे देखती हुई। धीरे से घर में चली जा रही है। लेकिन क्यों जा रही है?

सुभागी की याद आते ही आनन्द की आँखों में जैसे; कुछ कँप गया। उसे लगा कि उस खुले मैदान में भी उसका दम घुटने लगा हो। जिस बात से वह अपने अन्तर्मन में लड़ता हुआ गौर स्टेशन से यहाँ तक चला आया, वह बात, वह सुभागी का व्यक्तित्व, उसकी पूरी करुणा, जैसे, उस क्षण एकीकृत होकर एक ऐसी आँधी बन गई; जो आनन्द के अन्तःक्षितिज से उठकर एकाएक उसके समूचे व्यक्तित्व पर छा गई हो।

आनन्द घोड़े पर चलता हुआ दूर देखने लगा कि वह आँधी है; कितनी धूल उड़ रही है। धूल में पलास-सेमर के टूटते हुए फूल उड़ रहे हैं। और उस खूँखार आँधी के बीच खड़ी है सुभागी। वह रो-चीख नहीं रही है, खड़ी है, बाएँ हाथ से उसने अपने समूचे मुँह को ढक लिया है। उसकी आँखें बन्द हैं और उसका दायाँ हाथ आँधी में सामने फैला-तना हुआ है और वह हाथ जैसे, किसी को पुकार रहा है।

आनन्द ने घबड़ा कर सहसा पूछा—'सुभागी कैसे है सरजू ?"

आनन्द घोड़ा रोके खड़ा हो गया। चाँदनी में स्पष्ट दीख पड़ रहा था कि उसका ललाट पसीने से तर है और उसकी साँसे इस तरह तनी हुई चल रही हैं; जैसे, वह न जाने कितनी दूर से भागा चला रहा है। सरजू घबड़ा गया। लेकिन साहस बटोर कर उसने कहा, "सरकार......!"

फिर कुछ क्षणों तक सरजू मौन रहा, और आनन्द की साँसों में बेचैनी बढ़ रही थी।

"सुभागी कुशल से है न ?" आनन्द ने फिर घबड़ाहट से पूछा।

"कुशल क्या सरकार !" सरजू ने बताया, "आज पन्द्रह दिन हुए; उसके पति रामानन्द का स्वर्गवास हो गया !"

"स्वर्गवास ! रामानन्द मर गया !!" आनन्द उसी जगह स्थिर हो गया। धीरे-धीरे उसकी फूलती हुई साँसों में जैसे, बर्फीली हवा टकराने लगी हो और उसके अन्तर्मन की आँधी जैसे, वर्षा की तूफानी रात बन गई हो। वह अपने आप में ठिठुरने लगा। तभी सरजू ने बताया कि आज पाँच दिन हुए सुभागी रामनगर को छोड़कर अपने गाँव सिकन्दरपुर चली गई।

२

आनन्द जब रामनगर पहुँचा, उस समय रात के दस बज रहे थे। कातिक के दिन थे। क़स्बे के अधिकांश लोग अपने-अपने घरों में सो गए थे। कामता प्रसाद अपने कमरे में खाना खा रहे थे। उनकी पत्नी प्रभा उनके पास बैठी थी। नन्हा और गीता दूसरे कमरे में सो चुके थे। पारो बुआ अभी चौके की दालान में, फर्श पर बैठी थी और रत्ती से बातें कर रही थी।

आनन्द ने दरवाजे से जब घर में प्रवेश किया तब उसे लगा कि सब लोग सो गए हैं। उसने बुआ को पुकारते ही देखा कि वह स्वयं दौड़ी हुई उसी की ओर आ रही थी। रत्ती ने सब सामान सँभाला और आनन्द के लिए कुर्सी ला कर वह तेज़ी से तहसीलदार साहब के कमरे की ओर बढ़ गयी।

प्रभा कामता प्रसाद के कमरे से निकल कर उस समय आनन्द के पास आई जब वह चाय पी चुका था। माँ को देखते ही उसने अभिवादन

किया और फिर उसने बरामदे को पार कर, कमरे के दरवाजे से ही पिता जी को नमस्कार किया। वे खाना समाप्त करके पलँग पर लेटे थे। उसी स्थिति में उन्होंने आनन्द का नमस्कार स्वीकार किया, लेकिन एक दूसरे की यह इच्छा न हुई कि वे पास आएँ—चाहे पिता-पुत्र के पास, अथवा पुत्र-पिता के पास। यद्यपि दरवाजा बिल्कुल खुला था, उस पर केवल एक महीन कपड़े का पर्दा पड़ा हुआ था, लेकिन उस खुले हुए दरवाजे पर आनन्द के लिए एक ऐसी अदृश्य-अभेद्य दीवार खड़ी थी; जिसे वह कभी नहीं पार कर सकता था; उसे छू तक नहीं सकता था। इस तरह, उस दीवार के पीछे उसके पिता का वह कमरा था, जिसमें वह आराम कर रहे थे और दीवार के सामने आनन्द, उनका बेटा खड़ा था।

पत्थर की चौकी पर रत्ती आनन्द के हाथ-पैर धुला रही थी। रत्ती चुप-उदास थी। आनन्द को उस सूने आँगन में ऐसा लग रहा था, जैसे उसकी दीवारों से कोई लगा हुआ धीरे-धीरे रो रहा हो।

"सुभागी अब रामनगर में नहीं है रत्ती !" आनन्द ने उदास स्वर में पूछा।

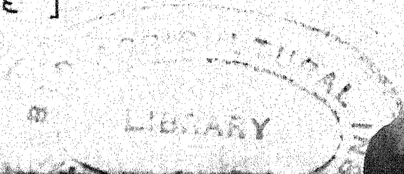
"नहीं बाबू ! वह तो अपने गाँव चली गई," रत्ती की उदासी भंग हुई और वह बताने लगी, "उसका पति रामानन्द मर गया। वह रोती-रोती पागल हो गई बाबू ! फिर उसके गाँव, सिकन्दरपुर के लोग आए और उसे जबरन गाँव वापस ले गए।"

चौके से सहसा बुआ की आवाज़ आई। खाना ठंडा हो रहा था। आनन्द आँगन से चौके में आया और भोजन करने लगा।

"तू इतना उदास क्यों है भइया ?" बुआ ने पूछा।

"मैं...नहीं तो।"

"नहीं क्या।" बुआ ने कहा, "उदास तो है, लेकिन भर पेट खाना



खा लेना। मैं आज सुबह से तेरी बाट जोह रही थी।"

आनन्द चुपचाप खाना खा रहा था। उसकी दृष्टि नीचे ही थी। बुआ ने फिर पूछा, "क्या सोच रहे हो भइया?"

"कुछ तो नहीं।"

क्षण भर में आनन्द ने भोजन समाप्त कर दिया और वह चौके से उठ कर आँगन में चौकी के पास चला आया। रत्ती लोटे में पानी लिए खड़ी थी। आनन्द को कुल्ला कराते हुए रत्ती ने फिर धीरे-धीरे बताया, "बाबू! सुभागी आपको बहुत याद कर रही थी। मैं जितना ही उसे समझाती थी उतना ही वह रोती थी। बाबू! जब वह रामनगर छोड़ रही थी तब उसकी बड़ी बुरी हालत थी। यहाँ के सब लोग उसे 'थू-थू' कर रहे थे। तहसीलदार साहब ने हुक्म दे रक्खा था कि वह चौबीस घंटे के अंदर रामनगर छोड़ दे। जिस सुबह वह रामनगर छोड़ने वाली थी, उस रात को मैं छिपकर उसके पास गई थी। वह न जाने कितनी देर तक मुझसे लिपटकर रोयी थी। बस, आपको याद करके मुझसे पूछती थी, "मेरे बाबू कब आयेंगे रत्ती! तू उनसे बता देना कि अब सुभागी भी मर जायगी।"

सहसा आनन्द रत्ती के पास से दूर हट गया। वह बरामदे को तेजी से पार करता हुआ दरवाज़े की ओर बढ़ा और बाहर आ गया। उसका मस्तिष्क कह रहा था कि वह बाहर खुली हवा में टहले और वह किसी से बात न करे—न रत्ती से, न पारो बुआ से, न सरजू से और वह अपना मुँह भी किसी को न दिखाए। वह टहलता-टहलता अपने आपको इतना थका दे कि वह यहीं नंगी जमीन पर गिर पड़े और सो जाय। लेकिन उसका मन कह रहा था कि वह पारो बुआ के पास बैठे, रत्ती को बुलाले, सरजू को पास खड़ा करले और वह सुभागी की एक-एक बात सुने; रामानन्द उसके पति का वह मर्ज़-उसकी दशा,

उसकी मृत्यु, उसका विवरण, सुभागी की करुणा, तहसीलदार साहब का दृष्टिकोण, उनके सारे पैंतरे और रुख, सुभागी का रामनगर छोड़ना और उसके एक-एक आँसू का विवरण जो उसने यहाँ गिराया होगा। दोनों विरोधी भावनाएँ एक-एक करके उसके व्यक्तित्व को चिन्तन की भँवर में डुबा जाती थीं और वह स्पष्ट रूप से कुछ तय नहीं कर पा रहा था कि वह सुने-सोचे, बातें करे अथवा एकाकी टहले, बैठे या सो जाये, या कहीं छिप जाए !

बुआ ने दरवाजे से पुकारते हुए कहा, "भइया रात अधिक बीत गई है, आओ सो जाओ।"

लेकिन आनन्द बारहदरी के सामने घास के मैदान में खड़ा रहा। बुआ पास आई और वह आनन्द के दायें हाथ को पकड़ कर घर में ले जाने के लिए आतुर हो गई।

भीतर बरामदे में एक ओर पारो बुआ, दूसरी ओर आनन्द, दोनों अपने-अपने पलँग पर लेटे थे। रत्ती आँगन में बर्तन मल चुकी थी और चौकी पर अपने हाथ पैर धो रही थी। आनन्द बिस्तरे पर पड़ा हुआ रत्ती को देख रहा था, जिसकी छाया आँगन की दीवार पर पड़ रही थी।

रत्ती जब आँगन से बरामदे में आई और अपनी खाट पर आने के पहले उसने चिराग़ बुझाया; तब आनन्द आँगन के अंधकार में एक डोलती हुई छाया देखने लगा। छाया दीवार से नहीं, बल्कि जमीन से लगी हुई आँगन में डोल रही थी। वह छाया लँगड़ा-लँगड़ा कर चल रही थी, और धीरे-धीरे कराह रही थी। उसी समय आनन्द ने अंधकार में देखा, एक दूसरी छाया दीवार से सरकती हुई आँगन में उतरती है। उसके हाथ में बाँस की एक छड़ी है। वह छाया बाँस की उस छड़ी को लँगड़ाती हुई छाया के हाथ में पकड़ा देती है और स्वयं उसे सहारा देती हुई आँगन में चक्कर लगाती रहती है।

सहसा बुआ ने पूछा—"नींद नहीं आ रही है भइया !"

"आ जायगी !"

"तुम थक गए हो इसी वजह से; रुको मैं तुम्हारे सर पर तेल रखती हूँ," यह कहते हुए बुआ उठी और शीशी का तेल लिए हुए आनन्द के सरहाने बैठ गई। आनन्द बुआ को मना करना चाहता था लेकिन बुआ के स्नेह, उसकी मातृत्व गरिमा के सामने वह सदा अपने को एक शिशु की भाँति पाता था, अतः उसकी हिम्मत न हुई कि वह बुआ के प्रस्ताव का विरोध करे।

बुआ चुपचाप आनन्द के सर पर तेल लगा रही थी। और आनन्द पलकें मूँदे हुए भी; भीतर आँखें खोले हुए था। 'पलकें पारो बुआ को दिखाने के लिए मुँदी थीं, जिससे उसे साँत्वना मिले कि उसका नन्दू सो जा रहा है। लेकिन उसकी आँखें भीतर इसलिए खुली थीं, क्योंकि उनमें वही आँगन की दोनों छाया डोल रही थीं।

आधा घंटा बीत गया, पारो बुआ उसी तरह आनन्द के सर पर तेल लगा रही थी। उसे पूर्ण विश्वास हो गया था कि नन्दू अब सो गया। लेकिन आनन्द की दशा अजीब हो रही थी। सर के तेल की ठंडक और मालिश की धीमी-धीमी ऊष्णता, उसकी पलकों पर नींद बन कर छा जाना चाहती थी, और उसकी पलकें भारी हो रही थीं। लेकिन दूसरी ओर उसकी आँखों में जैसे, कड़ुआ धुँआ भर रहा था। उसे लग रहा था, जैसे, वह सोया नहीं है, दौड़ रहा है। बहुत तेजी से दौड़ता हुआ किसी मरुस्थल को पार कर लेना चाहता है, लेकिन वह मरु की आँधी में फँस गया है और रेत के कणों से उसकी आँखें पटती जा रही हैं। इस तरह पलकों में नींद की कड़ुआहट और आँखों की पुतलियों में रेत के धुएँ से आनन्द बेचैन हो रहा था।

"तुम सो जाओ बुआ; मुझे लगता है, आज नींद नहीं आएगी !"

आनन्द के सत्य ने उसे स्पष्ट कहने को विवश कर दिया, "मैं चाहता हूँ बुआ कि तुम सो जाओ!"

"फिर मुझे कैसे नींद आ सकती है!" बुआ ने मालिश करते हुए कहा।

"तो कोई बात ही करो बुआ," आनन्द ने करवट बदलते हुए कहा, "तब शायद मुझे नींद भी आ जाए!"

बुआ सब बातें समझ रही थी। उसे यह पता था कि आनन्द को क्या हुआ; आते ही वह किस गोली से घायल हो गया। वह क्यों उदास है? उसे नींद क्यों नहीं आ रही है? और वह मुझसे क्या बातें करना चाहता है। बुआ सोच रही थी, आनन्द जिन बातों में पड़ा है, जिसे सोच रहा है; जिसे वह मुझसे सुनना चाहता; बातें करना चाहता है, उनमें कहीं नींद नहीं है। उसमें आग है, धुआँ है; विष है। लेकिन मुझे आनन्द को सत्य का दर्शन तो कराना ही होगा, आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों। और आने वाले कल में खतरा भी तो खड़ा हो सकता है। कल सत्य को झूठ में छिपाकर, अथवा सत्य को झूठ बनाकर न कोई आनन्द से कह दे। बड़ा-सा क़स्बा है, मइया यहाँ के तहसीलदार हैं। उनके किनारे हित-दोस्त-दुश्मन सब तरह के आदमी हैं। नन्दू के भोले मस्तिष्क में कोई और तरह का ज़हर घोल सकता है। लेकिन तब आनन्द की नींद?—बुआ सोचते-सोचते यहाँ रुक गई। उसी समय आनन्द ने बच्चों की भाँति पूछा, "बुआ, सुभागी को क्या हुआ? रामानन्द कैसे मर गया?"

पारो बुआ बड़ी देर तक चुप-चाप आनन्द के बालों में उँगलियाँ फेरती रही फिर एक क्षीण स्वर में उसने बताना शुरू किया, "यहाँ से उस बार, तुम्हारे लखनऊ चले जाने के बाद से ही सुभागी ने हवेली में आना, जाना छोड़ दिया। उसी बीच, एक दिन रामानन्द की हालत खराब हो गयी, उसके हाथ-पाँव ठन्डे हो चले। शाम को तहसीलदार

भइया को यह खबर मिली, वे स्वयं दौड़े हुए उसे देखने गए। फौरन डाक्टर चड्ढा को बुलवाया, सूइयाँ दिलवायीं और वहाँ चड्ढा की ड्यिुटी लगा दी। रामानन्द की जान बच गयी और दो दिनों में वह फिर अपनी हालत पर आ गया। इससे बाद से, सुभागी हवेली में कभी-कभी आने-जाने लगी। पता नहीं, एक दिन क्यों, प्रभा भाभी ने सुभागी को बहुत गालियाँ दीं, उसे कलंक तक लगाया। उसी क्षण से सुभागी ने फिर यहाँ आना-जाना एकदम छोड़ दिया। यद्यपि उस रात को तहसीलदार भइया ने प्रभा भाभी को उसी बेंत से दो बेंत मारा था और वे स्वयं सुभागी से माफी मागने उसके घर तक गए थे।"

"तब, क्या हुआ ! फिर क्या हुआ !"...आनन्द उठ बैठा।

"फिर हवेली में बुलाने के लिए, उन्होंने बहुत कहा, मुझे भेजा, रत्ती को बार-बार भेजा, लेकिन वह न आयी। हार कर एक दिन ये स्वयं सुभागी को बुलाने गए। बहुत समझाया, अंत में उसे धमकाया भी। लेकिन वह अपने संकल्प पर अटल थी, उसने साफ़ कह दिया, 'मेरा घर है, मेरा पति है, घर का मैं हर महीने किराया देती हूँ, अपने पति की मैं सुहागन हूँ; फिर मुझे किसी से क्यों डर ? इससे भी बुरा मेरा क्या कर लेगा कोई !' तहसीलदार भइया लौट आए !"

यह कहते-कहते बुआ की वाणी एकाएक रुक गयी। कुछ क्षणों के बाद उसने जल्दी से कहा, "संयोग वश उसके तीसरे ही दिन रामानन्द मर गया !"

"कैसे, क्यों मर गया ?" आनन्द उठता हुआ, बच्चों की तरह मचल पड़ा।

"भइया, कई तरह की लोग बातें करते हैं," बुआ ने करुणा के स्वर से कहा, "सुभागी कहती थी कि रामानन्द की दवा में जहर मिलाया गया था, जिसे पीते ही वह छटपटा कर मर गया। तहसीलदार भइया

और डाक्टर चड्ढा ये दोनों कहते थे कि सुभागी ने स्वयं उसे ज़हर दिया। और भी तरह-तरह की बातें हैं, लेकिन सच्चाई यह है भइया, कि रामानन्द अपने कोढ़ के मर्ज से इतना घबड़ा गया था कि वह स्वयं ज़हर खाकर मर गया !"

"स्वयं ज़हर खा कर मर गया ?" आनन्द ने जैसे स्वयं, अपने से पूछा।

"हाँ, मेरी मानो भइया ! सच्च, यही बात ! और तुम किसी की न मानो !"

आनन्द दीवार के सहारे खड़ा था। पारो बुआ खाट पर बैठी थी। वह पूछता जा रहा था, वह बताती जा रही थी।

सुभागी ने रामानन्द के शव को किसी से न छुलाया। ट्रक पर उसे रखवा कर वह अयोध्याघाट गयी। स्वयं उसने अन्तिम क्रिया की। यहाँ उसने यथाशक्ति सब अन्तिम उपचार किए। तहसीलदार भइया ने उसे फिर बहुत समझाया, हवेली में रखने के लिए अनेक प्रयत्न किए। उसे पढ़ने के लिए सलाह दी। यहाँ की कन्या पाठशाला में उसे नौकरी दिलाने लगे। लेकिन वह अपने घर में बंद, सिवा रोने के और उसे कुछ नहीं सूझता था। तहसीलदार भइया अन्त में बहुत बिगड़े और जब वे पूर्ण निराश हो गए, तब उन्होंने हुक्म दे दिया कि सुभागी चौबिस घंटे के अन्दर रामनगर छोड़ दे। सिकन्दरपुर के आदमियों को उन्होंने बुलाया और सुभागी जबरन यहाँ से घसीट ले जायी गयी।

रात काफी बीत चुकी थी। आनन्द निश्चेष्ट अपने बिस्तरे पर पड़ा था। आँगन में, वह देख रहा था, वे दोनों काली छाया अब तक डोल रही थीं। एक छाया लँगड़ी थी, दूसरी छाया उसे सहारा दे रही थी। आनन्द आँगन के अंधकार में अपलक देख रहा था। रात बीतती जा रही थी। पारो बुआ भी सो गयी, सब सो गए, पूरा रामनगर

क़स्बा सो रहा था। लेकिन आनन्द जग रहा था, उसकी कोई भी वृत्ति नहीं सो सकी थी, सब वृत्तियाँ सचेत जग रही थीं। उसके अंत:क्षितिज में हवेली का वह आँगन फैला था, और उस आँगन में वे डोलती हुई दोनों छाया थीं। एकाएक आनन्द को लगा, जैसे मनुष्यों की एक अपार भीड़ शोर करती हुई, चिल्लाती हुई आँगन को घेर रही है। वे दोनों छाया भागने के लिए रास्ता ढूँढ़ती हैं! लँगड़ी छाया डर कर जमीन पर गिर पड़ती है और उसे मनुष्यों की भीड़ कीड़े की तरह कुचल देती है। दूसरी छाया भाग निकलती है, लोग उसका पीछा करते हैं और वह भागती जाती है, भागती जाती है।

३

क़स्बा रामनगर धनुषाकार बसा था। सड़क को आधार बनाकर उसका दक्षिणी सिरा आरम्भ होता था और पश्चिम में अर्द्ध वृत्ताकार फैलकर उसका सिरा घूमता हुआ सड़क के उत्तरी छोर पर समाप्त होता था। आबादी से दक्षिण-ओर की भूमि कछार थी। और यह कछारा भूमि पक्के चार सौ बीघे के क्षेत्रफल में फैली हुई थी। इसमें तीन छोटे-छोटे ताल और एक नाला था, बाक़ी जमीन में जड़हन की इतनी उम्दा पैदावार होती थी कि अगर इसमें सरजू की बाढ़ न आए अथवा एकदम सूखा न पड़ जाये; तो इस कछार की एक पैदावार से पूरे वर्ष रामनगर की जनता जी सकती थी। दोनों तालों में सैकड़ों मन सिंघारा होता था, सैकड़ों मन मछलियाँ होती थीं और ताल के सूखने पर उसमें कवल-गट्टे और भँसीड़ (कमल की जड़) की पैदावार होती थी। नाले में तीना चावल की पैदावार होती थी और नाले के सूखने पर उसके कीचड़ में मनों गिरई और मँगुरो मछलियाँ मिलती थीं। यही कारण था कि



बया का घोंसला और साँप

रामनगर क़स्बे के दक्षिणी सिरे पर, पूरब से लेकर पश्चिम छोर तक मुख्यत: कुरमी, अहीर, माझी, और चमारों की बस्ती थी । इस ओर खास सड़क पर ताड़ी की दो दूकाने थीं, और उनसे परे शराब की भी एक ठीके की दुकान थी। इसी के पास सड़क पर इक्के और ताँगे का अड्डा था; यहाँ चार मिठाई की दुकान, और सात पान वालों की दुकानें थीं।

और क़स्बे की आबादी से उत्तर की ओर भूमि परती थी। और एक बहुत लम्बा-चौड़ा आम का बाग क़स्बे के पश्चिम छोर से पूरब तक फैला था। बाग का फैलाव सड़क तक आकर नहीं समाप्त हुआ था, बल्कि सड़क से पूरब तक भी इसका विस्तार था। क़स्बे के इस दक्षिणी सिरे पर राजा बाँसी की कोट थी और उन्हीं के द्वारा संचालित कोट के पास ही एक दुर्गा का मन्दिर, एक धर्मशाला एक गोशाला और एक संस्कृत पाठशाला थी। इसी सिरे पर, सड़क से पूरब, बाग के दक्षिणी छोर में हफ्ते में हर शनिवार के दिन बैलों का एक बहुत बड़ा बाज़ार लगता था, जिसमें गोंडा, बहराइच, और नानपारा तक के बैल बिकने आते थे।

सड़क से सीधे पश्चिम, क़स्बे में एक सड़क जाती थी और इसी सड़क के दोनों ओर क़स्बे की आत्मा बस्ती थी। साहूकार, बनिया, छीपी, कुन्दीगर, बरतन वाले, ठठेर, सुनार, दर्जी, हलवाई बज़ाज आदि सब तरह के कारोबारी और व्यवसायी की दूकानें और घर दोनों थे। इसी सड़क पर दायीं ओर, प्राइमरी स्कूल और डाकखाना था, और उससे आगे चलकर सड़क की बायीं ओर लड़कियों की पाठशाला थी, जिसका नाम था 'सेठ हीरालाल, ननको देवी कन्यापाठशाला।' इसी सड़क पर दायीं ओर एक गली में औरतों का एक छोटा-सा अस्पताल भी था, जिसे एक 'मिडवाइफ' अपने बूते पर चला रही थी और पूरे क़स्बे के अच्छे परिवारों-घरों में उसकी इज़्ज़त और पहुँच थी।

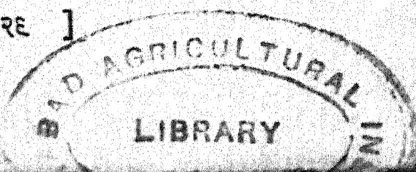
बया का घोंसला और साँप

मूल सड़क से पूरब की ओर रामनगर की तहसील थी। तहसील काफी लम्बी-चौड़ी बनी थी। उससे कुछ हट कर तहसीलदार साहब की पक्की हवेली थी। फूल-पौदों और तरकारियों से भरा हुआ उनका एक बागीचा था। उसके पास ही एक कच्चे-से मकान में उनके गाय-भैंस की बारी थी। उससे मिला ही हुआ उनके घोड़े का अस्तबल था, और वहीं सरजू का क्वाटर भी।

तहसीलदार साहब—कामता प्रसाद जी को रामनगर तहसील में रहते हुए सात वर्ष बीत गए थे। ये सन् पैंतालिस में खलीलाबाद तहसील से बदल कर यहाँ आए और तब से ये यहाँ के तहसीलदार थे। पिछले सात वर्षों में पूरी तहसील, पूरा इलाका और इसके खास-खास गाँवों तक में इनकी धाक जम गयी और बहुत यश भी इन्हें मिला। रामनगर के दक्षिण कछार में इनकी भी पक्के बीस बीघे-जड़हन की खेती थी जिसे इन्हें न जोतना पड़ता था, न बोना, न काटना, बस अगहन में बीस बीघे जड़हन की पैदावार इन्हें आराम से मिल जाती थी।

कामता प्रसाद की अवस्था पैंतासिल वर्ष की हो चली थी। इन्होंने तै कर लिया था कि जिन्दगी के शेष दिन इसी रामनगर में कटेंगे। पेन्सन लेकर यहीं एक मकान बनवाकर ये अपना शेष जीवन व्यतीत करने का स्वर्णिम स्वप्न देखते थे और उसका सबल पृष्ठभूमि इन्होंने यहाँ बना रक्खा था और दिन-रात उसको सबलतर बनाने की चेष्टा में रहते थे।

इनकी हवेली से दक्षिण, काँजी हाउस था, और पास ही वहाँ के मुंशी का क्वार्टर था। उस से लगा ही हुआ डिस्ट्रिक बोर्ड का अस्पताल था और पास ही जानवरों का भी अस्पताल अभी पिछले ही महीने खुला था, लेकिन अभी तक उस के लिए कोई डाक्टर नहीं आ सका था। पास ही एक नया-नया मिडिल स्कूल खुला था, जिसमें



अँग्रेजी की भी पढ़ाई आरम्भ हुई थी।

सड़क पर मूलत: मिठाई, पान, बीड़ी, मूँजा-सत्तू की दुकानें थीं। इनके अतिरिक्त एक पवित्र-भोजनालय भी अभी हाल ही में खुला था और इससे दूर मुसलमानों की भी दो चाय की दुकाने थीं; जिनमें चाय के अलावा गोश्त-रोटी भी मिल सकती थी।

इस तरह रामनगर एक ऐसी जगह थी; जो शहर और गाँव के बीच का एक सुन्दर रूप था। इसमें शहरियत भी थी, राजापन और जमींदारी की भी बू थी, इसके अतिरिक्त इसमें किसान, मजदूर, कर्मचारी और विभिन्न पेशे वालों का कोई न कोई रूप अवश्य था। यहाँ का प्रात:काल गाँव का-सा होता था, दोपहर छोटे से शहर का-सा होता था, मध्यान्ह धूल से पट जाता था और इसका रूप गाँव के एक अच्छे मेले की भाँति हो जाता था।

और संध्या !

यहाँ की संध्या एक अजीब तरह की होती थी—उदासी-थकान, फिर भी चहल-पहल और आनन्द-विहार की गति का एक अद्‌भुत समन्वय लिये हुए। धूल शाँत हो जाती थी, क़स्बे की सड़क का मेला थम जाता था, और इस शाँत थमाव के ऊपर क़स्बे का धुआँ सारे वातावरण को उदास कर देता था और ऐसी संध्या में कहीं बैट्री के रेडियो बोलते थे, कहीं ग्रामोफोन के रिकार्ड और कहीं हँसी और कहकहे। शाम जब बूढ़ी होने लगती थी; तब क़स्बे का धुआँ धीरे-धीरे दक्षिण की ओर कछार में फैल जाता था और धुएँ का एक पतला महीन बादल उस की धरती के ऊपर तन जाता था फिर उसके नीचे कछार के ताल और नाले में रहती हुई मेढकी, ताल की चिड़ियाँ इस तरह धीरे-धीरे बोलने लगती थीं, जैसे अभी वे धुएँ के बादल वहाँ बरसने लगेंगे।

आनन्द को रामनगर की यही शाम बेहद पसन्द थी। वह सुबह

आठ बजे सो कर उठा और फिर पूरा दिन वह कमरे में लेटा ही रहा। पारो बुआ के बहुत कहने पर वह शाम के पाँच बजे हवेली से बाहर निकला और धीरे-धीरे टहलता हुआ सड़क पर गया। सड़क पर आते-आते उसे बीसों आदमियों ने सलाम बजाया। क्योंकि आनन्द, कामता प्रसाद जी तहसीलदार का लड़का था; उसकी धाक वहाँ सब पर थी; विशेषकर सड़क के सारे दुकानदारों, खुँचावालों और ताँगे-इक्का वालों पर।

यद्यपि आनन्द को वह अनपेक्षित गुरुता बिल्कुल नहीं पसन्द थी, इसलिए वह कभी-कभी उन सब से अपनी राह काटता था; उन से अपनी आँखें बचाता था; जो अत्यन्त अनावश्यक रूप से उसे अपनी लघुता, हीनता दिखाकर सलाम बजाते थे। इसका एक परिणाम यह भी हुआ था कि आनन्द का इस वर्ग से कोई सम्पर्क या जान-पहचान न थी। उस सड़क पर उसका परिचय केवल दो व्यक्तियों से था; एक बिपती नाम की बुढ़िया तमोलिन और खुदाबक्स नाम के इत्रफरोश से।

सड़क पर आकर आनन्द खुदाबक्स की छोटी-सी दुकान की ओर बढ़ने लगा। एकाएक पीछे से दो व्यक्तियों की पुकार आई। आनन्द ने घूम कर देखा; उनमें से एक मुंशी रामहरख लाल थे, काँजी हाउस के मुंशी, और दूसरे थे पं० गिरजादयाल जी, डाकखाने के मुंशी। आनन्द ने उन्हें नमस्ते किया और वे दोनो पास आ गए।

रामहरख लाल, जिनके मुँह में बुरी तरह से पान ठुसा था, गड़-गड़ाती हुई जबान से उन्होंने कहा, "कहिए, कहिए आनन्द बाबू! कब आना हुआ?" आनन्द उनको उत्तर भी न दे पाया कि उसी बीच में गिरजादयाल जी बोलने के पहले इतनी जोर से हकलाए कि उनके मुँह में भरी हुई पान की पीक का एक कुल्ला उनके रेशमी कुर्ते पर आ पड़ा, और वे इस पर भी इतनी जोर से हँसे कि जिससे उनके मुँह के छींटे

हवा में उड़ने लगे। उन्होंने कुर्ते को, अपनी धोती के छोर से पोछते हुए कहा ?

"क...क...क कहिए आनन्द बाबू; क्या हाल-चाल हैं ?"

"सब ठीक ही है !" आनन्द ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया।

"य...य...यहाँ...त...तो बड़ी भारी...घ...घटना हो गई," गिरजादयाल ने पान की पीक को थूकते हुए कहा, "आपकी सुभागी त...त...तो चली गई यहाँ से...।"

आनन्द बिना कुछ बोले हुए आगे बढ़ने लगा – खुदाबक्स की दुकान की ओर नहीं, बल्कि सीधी सड़क से दक्षिण की ओर।

"टहलने जा रहे हैं आनन्द बाबू ?" रामहरख लाल ने पूछा।

"हाँ, सोच तो रहा हूँ कि जरा टहल आऊँ," आनन्द ने नम्रता से कहा, "लखनऊ से कल रात को ही यहाँ आया हूँ, घर पर पड़ा रहा, सोचा कि थोड़ा कछार की ओर टहल आऊँ।"

"अच...च...अच्छा ही किया..क .क..क्यों नहीं क्यों नहीं।"

गिरजादयाल जी कुछ और कहने के लिए गले में हवा भर ही रहे थे कि आनन्द ने उनसे जान छुड़ाते हुए हाथ जोड़ कर विदा ली, "अच्छा पंडित जी, फिर भेंट होगी।"

यह कह कर आनन्द आगे बढ़ गया। कुछ दूर बढ़, उसने मुड़ कर पीछे देखा, रामहरख लाल अकेले उसकी ओर चले आ रहे थे और उसने यह भी देखा कि पं० गिरजादयाल जी सड़क पर आदमियों से घिरे हुए कुछ ऐसी बातें कर रहे थे; जो आनन्द से ही संबद्धित थी; क्योंकि उनका दायाँ हाथ संकेत के लिए उस समय आनन्द की ही ओर उठा था। लेकिन आनन्द फिर भी मुस्करा उठा और रामहरख लाल जब उसके पास आ गए तब वह एकाएक गंभीर हो गया और चुपचाप आगे बढ़ने लगा। मुंशी जी भी चुप थे, यद्यपि उनके ओंठ बारबार कुछ

कहने के लिए फड़फड़ा रहे थे।

आनन्द ने फिर शिष्टता-वश उनसे पूछा, "कहिए, और क्या हाल-चाल है ?"

"सब ठीक है बाबू !" मुन्शी जी को बोलने का अवसर मिला, 'लेकिन क्या संसार है; जमाना ही बदल गया।"

"क्यों !"

"आप ने सुभागी के विषय में सुना ही होगा," मुन्शी जी ने पीक घूटते हुए कहा, "जैसा, रामायण में कहा गया है, त्रिया चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं...ठीक कहा है !" इसके बाद मुन्शी जी च...च...आहा...आहा करने लगे। आनन्द को उनपर हँसी आ रही थी; उनकी मूर्खता पर कम, लेकिन उनके ज्ञान प्रदर्शन की गुरुता पर सब से अधिक। लेकिन आनन्द अपने भावों को छिपाए हुए चुपचाप चलता जा रहा था।

मुन्शी जी आनन्द के प्रति अपनी समवेदना और करुणा प्रकट करते हुए कह रहे थे, "सब बातें तो छिपा दी गईं, कोई कानों-कान नहीं जानता; लेकिन इस दरम्यान में जो घटना घटी वह बहुत भयानक थी !"

"जैसे !" आनन्द खड़ा हो गया।

"मुन्शी जी आनन्द के बिल्कुल मुँह के पास आ गए और भेद भरे स्वर में उन्होंने अपनी आँखें चमकाते हुए कहा, "खुद सुभागी ने अपने हाथों रामानन्द को जहर दे दिया !"

"यह झूठ है !" जैसे, आनन्द सहसा चीख उठा हो।

"बाबू ! मैं इसके लिए गंगा उठा सकता हूँ; यह बात झूठ नहीं है," मुन्शी जी ने गंभीरता और आत्मविश्वास से कहा, "क्या समझा था बाबू आपने उस गाँव की छोकड़ी को !"

आनन्द मूक-निश्चेष्ट मुन्शी जी को अपलक देखता हुआ खड़ा था। एकाएक कुछ ही क्षणों के बाद उसने बहुत तेजी से मुन्शी जी के सामने

अपना हाथ जोड़ दिया, "अच्छा, धन्यवाद...अब मुझे आज्ञा दीजिए !"

यह कह कर आनन्द मुड़ा और बहुत तेजी से सड़क की दायीं तरफ चल पड़ा। एक ही साँस में वह सड़क के किनारे के नाले को फाँद गया और बहुत तेजी से बढ़ता हुआ कछार में जाने लगा। उसे ऐसा लग रहा था, जैसे, वह खुले मैदान में नहीं चल रहा था; वरन् वह एक ऐसी तंग-अँधेरी गली में चल रहा था जिसके दोनों सिरों पर ज़हरीला धुआँ सुलग रहा हो।

कछार में जड़हन की खेती अपनी पूरी जवानी पर थी। जड़हन के एक-एक पौदे उसकी एक एक बाली, फूल में मदमस्त और आने वाले अन्न के रस से झुकी जा रही थी।

पूरे कछार की धरती, उसका तना हुआ सीना धानी रंग का हो गया था और उसपर हवा की फिसलती हुई लहरें इस तरह लग रही थीं, जैसे उस पर झुका हुआ आकाश गा रहा हो और पूरी फसल उसके संगीत से शरमा रही हो।

आनन्द कछार के एक सिरे पर खड़ा हुआ अपनी एक दृष्टि में कछार के पूरे फैलाव को समेट रहा था। लेकिन उस खुले हुये मैदान में, उस अन्न की सुगंधि से भरी हुई धरती पर आनन्द को अब भी लग रहा था जैसे, उसका दम घुट रहा हो। वह चाहता था कि कछार की सारी ठंडी हवा, ताजी सुगंधि उसकी स्नायुओं में, प्राण वायु में घुल जाय और वह शान्त हो जाय; जैसे कि जड़हन का एक-एक पौदा शान्त था, पूरा कछार शान्त था। उसके दोनों ताल शान्त थे।

कछार के ऊपर वायुमंडल में रामनगर कस्बे का धुआँ बादल बनकर छा रहा था और आनन्द को लग रहा था, जैसे धुएँ का बोझ उसके सर पर आता जा रहा हो और वह निःसहाय धुएँ के उस बोझ को देख रहा हो। वह एक ऊँचे से मेड़ पर चलता हुआ ताल की ओर बढ़ रहा

था। ताल के मेढक धीरे-धीरे टुर्र-टुर्र...कुर्र-कुर्र कर रहे थे। वह कुछ क्षणों में ताल के किनारे पहुँच गया और वहाँ खड़े-खड़े वह धुएँ और जड़हन की जवान फ़सल से भरी हुई धरती के ऊपर देखने लगा। ऊपर धुआँ, नीचे हरी फ़सल और दोनों के बीच एक खुला हुआ हिस्सा; शान्त गम्भीर। आनन्द उसी हिस्से को देख रहा था। शाम का अँधेरा बढ़ता जा रहा था। वह खुला हुआ भाग धुँधला होने लगा था; तब एकाएक आँनन्द ने मानो देखा, उस खुले हुए भाग में एक धानी रंग की चूनरी उड़ रही थी और उसके परे कोई स्त्री धीरे-धीरे रो रही थी और मनुष्यों की एक अदृश्य भीड़ ठहाके लगा रही थी।

आनन्द वहाँ से वापस लौटने लगा। उसकी घुटन अब शान्त थी लेकिन उसके मन में कहीं से कुछ भरता जा रहा था; जिसमें पीड़ा कम थी; लेकिन उसमें बोझ बहुत था।

वह कछार को पार करता हुआ सड़क की ओर लौट रहा था।

सड़क के किनारे पहुँच कर उसने फिर एक बार घूम कर उस खुले हुए भाग के धुँधलके में देखा। मानो वहाँ की चूनरी फट कर तार-तार हो गयी थी, और उसका एक-एक चीथड़ा धुएँ के बादल में खोता जा रहा था। मनुष्यों के क़हक़हे बंद हो गए थे। आनन्द खड़ा हुआ अपलक-शून्य दृष्टि से उसी में तक रहा था और दूसरे ही क्षण उसे लगा; जैसे, धुएँ का बादल कछार के सीने पर, आनन्द के मस्तक पर धीरे-धीरे नन्ही-नन्ही बूँदों में बरस रहा हो—फूटी हुई सुहाग की चूड़ियाँ, फटी हुई चूनरी के एक-एक तार और कजरारे आँसू के रूप में।

आनन्द जब क़स्बे की सड़क पर आया, तब चारो ओर, घर, सड़क और दूकानों में चिराग जल चुके थे। वह चुपचाप सीधे खुदाबक्स की

दूकान पर गया। उसे देख कर खुदाबक्स इतना गद्गद हो गया कि उसके मुँह से कोई शब्द न निकल सका। उसने बहुत स्नेह और सम्मान से आनन्द को अपनी गद्दी पर बैठाया। बेहतरीन इत्र की दो फुरहिरी उसने तुरन्त भेंट की, और सम्मान भरे शब्दों में उसने बताया कि किस तरह रामनगर क़स्बा अपने वसूलों से, जीवन के बहुमूल्य आदर्शों से दूर हटता जा रहा था। उसी से यह पता चला कि रामनगर के तीन साहूकार मिलकर एक सिनेमाघर खोलने जा रहे थे। फिर उसने अपने व्यापार के भी विषय में बताया कि किस तरह तेल-इत्र के बाज़ार में मन्दी आ गयी थी। कोई बिक्री-बट्टा नहीं। उसने बताया कि जब से जमींदारी का उन्मूलन हुआ, राजा, तालुकेदार जमीदार वगैरह बेतरह परेशान थे। चारो ओर से उन लोगों ने अपने हाथ-पाँव बटोर लिए थे; फिर इत्र, खुशबूदार तेल को कौन पूछे!

आनन्द का मन खुदाबक्स के पास बैठने से बहुत ही हल्का हो चला था। उसी से साफ़-साफ़ यह भी पता चला कि किस तरह क़स्बे के एक वर्ग में सुभागी और तहसीलदार साहब को लेकर कनफुसकियाँ चल रही थीं और कैसे दूसरे वर्ग में सुभागी के नाम को खुले आम ज़लील किया जा रहा था।

थोड़ी देर के बाद आनन्द खुदाबक्स से बिदा लेकर सड़क से पूरब की ओर बढ़ने लगा। उसने दूर से ही देखा, अस्पताल-के सहन में नीम की छाया तले एक पलँग बिछा था और उसके आस-पास चार बेतरतीब कुर्सियाँ पड़ी थीं और उन पर भरपूर लोग बैठे थे। आनन्द ने अनुभव किया, उनमें कभी कोई ठहाका लगा रहा था, कभी-कभी समवेत स्वर से वहाँ हँसी फूट रही थी और कभी उनमें एकाएक अजीब-सी डरावनी शान्ति फैल जाती थी, उस शान्ति में भी कोई किसी-के कान में कुछ कह रहा था, कोई फुसफुसाहट में अपनी अभिव्यक्ति दे रहा था और कोई ओठों-ओठों,

आँखों-आँखों वार्तालाप कर रहा था।

चुपचाप आनन्द अपने रास्ते चला जा रहा था, एकाएक नीम के तले से कई लोगों ने मिलकर आनन्द का स्वागत किया। लेकिन उनके निमन्त्रण को पाकर आनन्द एक क्षण के लिए अपनी जगह पर खड़ा रहा; तब तक उसने देखा, अस्पताल के कम्पाउन्डर, स्कूल के मुन्शी, तह-सील के बड़े बाबू वगैरह अपने-अपने स्थान को छोड़कर उसके स्वागत के लिए चल ही देने वाले थे। अतएव आनन्द को उधर ही मुड़ना पड़ा। उनके पास पहुँचते ही उसे ऐसा लगा; जैसे कोई अमूर्त, हीन मानव वहाँ छिपकर बैठा हो जो अपनी मौन उपेक्षा से उसे पागल बना देना चाहता हो।

आनन्द को लोगों ने एक सिरे पर बैठाया और लोग उसकी ओर उत्सुक होकर उसे देखने लगे।

आनन्द उन लोगों से क्या बात करे, और वे लोग आनन्द से क्या बात करें, किसी को कुछ नहीं सूझ रहा था। आनन्द के सामने सभी अपने को एक अव्यक्त हीन-ग्रंथि में बँधे पा रहे थे। आनन्द की अलस आँखें, उसका थका-थका-सा उदास चेहरा उन सभी बैठने वालों पर इस प्रकार अव्यक्त ढंग से अपना प्रभाव डाल रहा था; जैसे, उसके व्यक्तित्व में सम्मोहन की कोई शक्ति हो।

"तहसीलदार साहब से आप मिले कि नहीं!" अस्पताल के कम्पाउन्डर ने पूछा, "आपको उन्होंने क्या सलाह दी?"

आनन्द को ये दोनों बातें समझ में न आईं, लेकिन वह इन दोनो प्रश्नो के पृष्ठभूमि में खड़ी हुई समस्या को अवश्य समझ रहा था। उसने मुस्कराते हुए पूछा, "आपका मतलब क्या है?"

"मतलब कुछ नहीं, कुछ नहीं...बस," कम्पाउन्डर ने घबड़ाते हुए कहा, "यही कुशल मंगल की बातें, घर-गृहस्थी की बातें।"

"लेकिन हमारी घर-गृहस्थी से आपको क्या चिन्ता ? आप क्यों इतना परेशान हैं ! व्यक्तिगत चीजें, व्यक्तिगत सत्य, व्यक्ति सापेक्ष्य हैं, समाज सापेक्ष्य तो नहीं !"

आनन्द की भाषा को कोई न समझ सका, नीम के तले फिर कुछ क्षणों तक शान्ति रही। ऊपर नीम की पत्तियों में हवा का मद्धम-मद्धम स्पर्श भी ऊपर से शान्ति बरसा रहा था।

सहसा स्कूल के मुंशी ने दिल थाम कर कहा, "लेकिन चाहे जो हो, सुभागी पर अत्याचार हुआ।" यह कहते हुए उन्होंने डाक्टर की ओर देखकर अपनी दायीं आँख दबा दी।

"आनन्द बाबू पर क्या कम हुआ ?" यह कह कर बड़े बाबू ने अपना निचला ओंठ धीरे से भींच दिया।

जब इन दोनो बातों को सुनता हुआ भी आनन्द चुप रहा, तब इसके आगे किसी की कुछ बोलने की हिम्मत न हुई। वे लोग—सब के सब, यही चाहते थे कि आनन्द उनसे अपने विषय में कुछ बातें करें, सुभागी के सम्बन्ध में वस्तुस्थिति जानने के लिए वह अपनी जिज्ञासा प्रकट करे, उनसे समवेदना की अपेक्षा करे और वह स्वयं कुछ ऐसी भी बातें, इसी बहाने बक जाए, जिसे लेकर वे हफ्तों उनसे आनन्द लूट सकें। लेकिन आनन्द सब समझता था—एक-एक के भाव और उनके लक्ष्य। वह गाँवों में भी रहा था और शहर में रहता ही था तथा क़स्बे में आया ही था। इस तरह वह गाँव, शहर और क़स्बा तीनों की आत्माओं से परिचित था। उसकी दृष्टि में गाँव की आत्मा, उसकी संस्कृति एक ऐसी शकुन्तला है, जो ऋषि कन्या है, फिर भी शापित है; किसी की दुल्हन और प्रेमिका है, लेकिन उपेक्षिता है। फिर भी इसका पथ, जीवन है, मरु नहीं, इसमें विश्वास तपस्या और श्रद्धा है, मृत्यु की पराजय और क्षुद्रता नहीं। ठीक इसके विरुद्ध, दूसरी सीमा पर शहर की आत्मा और संस्कृति

है—एक ऐसी स्वतंत्र कुमारी की भाँति; जो अपने व्यक्तित्व में अपने को सम्पूर्ण समझती है। वह सब की है, सब उसके हैं लेकिन कोई किसी का नहीं है। इसलिए उसमें विकास है, कहीं गतिरोध नहीं, सुख है, उपभोग है, लेकिन शान्ति नहीं है। इन दोनों के बीच में है क़स्बे की आत्मा उसकी संस्कृति, यह चौके की राँड़ की तरह है—एक ऐसी जवान विधवा की तरह, जो बिना गौने गए हुए ही एकाएक राँड़ हो गयी हो और उसके आगे-पीछे तमाम उँगलियाँ उठ रही हों, फुसफुसाहट हो रही हो। उसका अपना कोई स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं है क्योंकि उसका मुँह शहर की ओर है और पीठ गाँव की ओर।

आनन्द के मस्तिष्क में ये तीनों रूपक अत्यन्त स्पष्ट थे; इसलिए वह सब की चुप-चाप सुनता जा रहा था और मौन-उपेक्षा से भरता जा रहा था। थोड़ी देर के बाद वह वहाँ से उठा और सीधे हवेली की ओर बढ़ने लगा।

रात को खाना खाने के उपरान्त, आनन्द पारो बुआ और रत्ती तीनों खुले हुए आँगन में खड़े थे। नन्हा और गीता दोनों प्रभा के कमरे में सो गए थे। प्रभा, कामता प्रसाद के सर में तेल लगाती हुई उनके सरहाने खड़ी थी और उस कमरे से, धीरे-धीरे बातें करती हुई प्रभा का स्वर अस्पष्ट रूप में आँगन तक आ रहा था। वे तीनों आँगन में खड़े-खड़े अपने-अपने ढंग की बातें कर रहे थे। पारो बुआ लखनऊ की बातें कर रही थी, मामा-मामी की बात, आनन्द की पढ़ाई की बात और उसकी छुट्टी की बात। रत्ती सुभागी की बात कर रही थी और आनन्द 'हाँ-नहीं, अच्छा ठीक' आदि शब्दों से अपनी अभिव्यक्ति दे रहा था।

आँगन में पश्चिम की दीवार की छाया पड़ रही थी और आनन्द छाया के उस धूमिल अंधकार में कल की डोलती हुई उन दोनों छाया को ढूँढ़ रहा था, एक छाया जो लँगड़ा कर चल रही थी, कराह रही थी

और दूसरी छाया उसे सहारा देती हुई धीरे-धीरे आगे बढ़ा रही थी।

सहसा कामता प्रसाद के कमरे में किसी चीज के फूटने की आवाज़ आयी; जैसे, किसी ने तेल की भरी हुई शीशी या किसी और चीज़ का बोतल आवेश में आकर फर्श पर पटक दिया हो। आँगन में वे तीनों चुप-हतप्रभ-से हो गए। और दूसरे ही क्षण कमरे से कामता प्रसाद की आवाज़ उभरने लगी—

"मारे जूतों के साले का भेजा गंजा कर दूँगा। क्या समझ रक्खा है उसने! अब वह इसके बाद, एक भी क़दम मुझसे खिलाफ होकर चलेगा तो मैं उसके पाँव तोड़ दूँगा। सुभगिया थी, डायन-ज़लील कहीं की। मैं अगर चाहता तो उस चुड़ैल को फाँसी पर लटकवा देता। हत्यारी कहीं की, जो अपने पति की नहीं हुई उसका मुँह देखना पाप है।"

आनन्द को स्पष्ट हो गया कि उस कमरे में क्या हुआ और क्यों किससे वे क्रोध भरी बातें की जा रही थीं; किसे सुनाकर की जा रही थीं।

आनन्द निश्चित पगों से बढ़ता हुआ आँगन से बरामदे में आया और कमरे के दरवाजे पर पहुँच कर उसने आवाज़ दी और पर्दा हटा कर वह कमरे में प्रविष्ट हो गया।

क्षण भर के लिए कामता प्रसाद चौंके, लेकिन दूसरे ही क्षण उन्होंने उसी आवेश में पूछा—"तुम यहाँ कैसे आए?"

"आपने मुझे बुलाया, इसलिए!" आनन्द ने शान्ति से उत्तर दिया।

"मैं तुझे क्यों बुलाता?"

"फिर सुभागी को लेक रक्यों-गालियाँ सुनाई जा रही हैं?" आनन्द के स्वर में तीव्रता उभर आयी थी। वह पूछता जा रहा था, "आप अपने जूतों से किस साले का भेजा गंजा कर रहे थे? आपके कमरे में तो केवल माता जी हैं, लेकिन इस समय आप जितनी गालियाँ देरहे ,हैं

जितना क्रोध-आवेश दिखा रहे हैं; उसके क्या अर्थ हैं ?"

यह कह कर आनन्द प्रभा की ओर देख कर, कामता प्रसाद को देखने लगा। उनके ओठ काँप रहे थे, आँखों में आवेश टपक रहा था।

उन्होंने अपने को किंचित संयत रखते हुए कहा, "सुना है, तुम सुभगिया के लिए पागल हो रहे हो !"

आनन्द चुप था। अपलक उन्हें देखता जा रहा था।

"लेकिन क्या तुम्हें यह भी पता है कि वह कितनी ज़लील थी—चुड़ैल बदमाश कहीं को ! उसने अपने हाथों अपने पति रामानन्द को ज़हर दिया है ! पता है !!"

"आखिर क्यों ?" आनन्द ने अत्यन्त संयत भाव से पूछा।

"बेवकूफ़ ! क्यों-क्यों की बात मत कर !" कामता प्रसाद ने क्रोध में आते हुए कहा, "मैं अगर चाहता तो सुभगिया को फाँसी पर लटकवा सकता था, लेकिन मैं ने जाने दिया और सारे क़स्बे का मुँह बन्द कर दिया !"

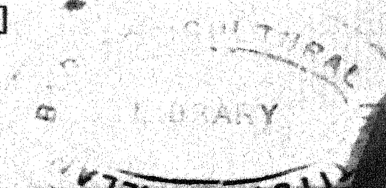
"क्यों ?" एकाएक आनन्द ने फिर पूछा।

कामता प्रसाद का दिल न जाने क्यों आनन्द के इस सूक्ष्म प्रश्न से घबड़ा रहा था और आनन्द की सूनी उदास, फिर भी क्रान्तिकारी दृष्टि से उनके रोंगटे खड़े हो रहे थे और इसकी प्रतिक्रिया से उनकी आँखों में क्रोध बढ़ता जा रहा था।

"क्योंकि मुझे तुझ पर और उससे भी ज्यादा तेरी दिवगंता माँ पर दया आयी !"

एकाएक बीच ही में आनन्द के मुँह से फिर वही प्रश्न निकल पड़ा, "यह क्यों ?"

"नालायक इसलिए !" यह कहते हुए कामता प्रसाद ने आनन्द के



मुँह पर एक ज़ोर का चाँटा मार दिया। प्रभा चीख़ पड़ी, और उस चीख़ को सुन कर पारो बुआ कमरे में दौड़ आयी और उस ने आनन्द को अपने अंक में सँभाल लिया, लेकिन आनन्द उसी तरह चुप निश्चेष्ट-स्थिर खड़ा रहा! काँपते हुए कामता प्रसाद अपने पलँग पर बैठ गए और हाँफने लगे।

बुआ ने आग्नेय दृष्टि से प्रभा को देखा, "अब छाती ठंडी हो गई आपकी!" फिर बुआ ने कामता प्रसाद को घृणा से देखा, "शरम नहीं आती; इतने जवान बेटे पर हाथ उठाते हुए!"

सहसा आनन्द ने बुआ के जलते हुए मुँह पर अपना हाथ रख दिया, "कुछ नहीं बुआ, कुछ नहीं!"

"निकल जाओ मेरे कमरे से सब लोग!" कामता प्रसाद ने क्रोध में चीखते हुए कहा!

"आप होश में हैं कि नहीं!" आनन्द ने दृढ़ता से पूछा!

"अभी कुछ बाकी है क्या!" कामता प्रसाद ने कहा, "अब जूतों से बात करूँगा!"

बुआ रो पड़ी। आनन्द उसे सँभालने लगा, "रोओ नहीं बुआ! आज मैं तैयार हूँ कि ये दिल खोलकर मुझसे जूते से ही बातें करलें! क्योंकि बातें करने के लिए इनके पास जबान नहीं है; जूते हैं;! जबान मनुष्य के पास होती है और जूते...!"

बुआ रोती हुई आनन्द को कमरे से बाहर खींच रही थी। आनन्द बुआ को समझाता हुआ कामता प्रसाद को देख रहा था।

"आपके पास छोटी-सी ताकत है; झूठी-सी सामाजिक मर्यादा है, इसके बाद आपके पास क्या है; ढूढ़िए आप अपने में!!"

'मेरे कमरे से निकलते हो कि नहीं!" बीच ही में क्रोध से चीखते हुए कामता प्रसाद ने कहा और पलँग से वे फिर उठ खड़े हुए।

"मैं इस कमरे से थोड़ा रुक कर जाऊँगा," आनन्द ने कहा, "क्योंकि

इस कमरे की दीवारें, मेरे और आपके बीच, आपके सुभागी के बीच बहुत सी बातें जानती हैं! मौत-अन्धकार और जीवन के साक्षी हैं ये दीवारें। मैं इन्हें और भी कुछ बातों का साक्षी बनाना चाहता हूँ; इसलिए मैं अपने दुराग्रह से यहाँ कुछ क्षण और रुकूँगा; क्योंकि मैं फिर इस कमरे में वापस नहीं आऊँगा। और तब यह सूना कमरा, इसकी नंगी दीवारें एक दिन आपको पागल बना देंगी। आपके पाप, आपकी दूषित अन्तरात्मा आपके झूठे स्वच्छ-निर्मल वाह्य व्यक्तित्व पर खून के धब्बे डालेगी और तब अपने सारे सुख, उपभोग, और अपनी सारी सामाजिक मर्यादाओं के बावजूद आप अकेले इन्हीं नंगी दीवारों से अपना सर टकरायेंगे!"

"चलो! चलो!!...कल के लौंडे; निकल जा मेरे कमरे से," कामता प्रसाद ने तीखी उपेक्षा से कहा, "मुझे नहीं मालुम था कि उस चुड़ैल में इतनी ताक़त थी कि वह मुझे आज भी पागल बनाए हुए है; नहीं तो मैं उस दिन ही उसकी कहानी समाप्त कर देता।"

"आप नहीं कर सके; ऐसा कहिए," आनन्द ने कहा, "क्योंकि सुभागी अपने में एक शक्ति थी; और किसी शक्ति को मनुष्य नहीं नष्ट कर सकता।"

"तो क्या लखनऊ से इस बार तू मेरी नाक काटने आया है!"

"यह काम तो आप ने रामनगर क़स्बे पर छोड़ रक्खा था," आनन्द ने गम्भीरता से उत्तर दिया, "और उस ने इस काम को अब तक पूरा कर दिया है!"

"क्या कहा!" कामता प्रसाद क्रोध से एकाएक फिर काँपने लगे।

"जो सत्य है।"

यह कह कर आनन्द चुपचाप बुआ को साथ लिए हुए कमरे से बाहर निकल आया। रत्ती बाहर बरामदे में बैठी रो रही थी। रात

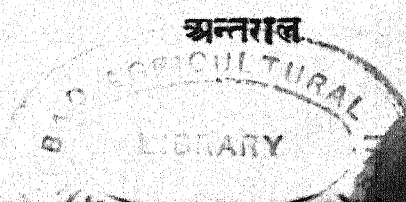
आधी बीत चुकी थी और आँगन का अंधकार बेहद घना हो चला था। घने अंधकार में आनन्द ढूँढ़ रहा था, वे दोनो छाया अब तक वहाँ नहीं उतरी थीं। एक छाया लँगड़ी थी। उसका न आना स्वाभाविक था लेकिन दूसरी छाया?

आनन्द को बिस्तरे पर पड़े-पड़े जब अधिक देर हो गई और उसकी मन:स्थिति में जब एक भयानक घुटन और उसकी शिराओं में एक अजीब तरह का तनाव पैदा होने लग, तब वह विक्षिप्त-सा हो उठा और आँगन में घूमने लगा। घूमते-डोलते-डोलते जब वह थक गया, तब रुककर वह ऊपर आकाश की ओर देखने लगा। वह चाहता था कि किसी तरह कम-से-कम उसकी आँखों के जलते हुए कोयले बुझ जाएँ। उसी समय उसे लगा, जैसे आँगन की उत्तरी दीवार के परे कोई बहुत धीरे-धीरे कराह रहा हो और बीच-बीच में किसी के रोने की सिसकियाँ भी उभर रही हों।

वह आँगन की खिड़की खोल कर बाहर आया, उत्तरी दीवार के पास गया। वहाँ कोई न था, लेकिन उसे अब भी वह कराह, वह मौन रुदन जैसे, सुनायी पड़ रहा था। अंधकार नहीं रोता, क्षितिज नहीं कराहता शून्य नहीं सिसकता, लेकिन इंसान का अंत:क्षितिज अवश्य रोता है, और यह रुदन तब बहुत भयानक होता है; क्योंकि तब यह रुदन, यह मौन करुणा, प्रकृति के सीने पर जम जाती है, और स्वयं सवाक् होकर अपने सूक्ष्म अस्तित्व से उसे भेदने लगती है।

आनन्द बहुत दूर तक फैले हुए अंधकार में देख रहा था। अंधकार में भी रुपहली किरने होती हैं, उसका एक रूप होता है। उसको अनुभव हुआ; वह मौन रुदन-कराह उसी रुपहले अंश से उभर रही है। उस ने देखा, पहचाना, अपने पग को निश्चित किया और वह उसी के पीछे, अंधकार में बढ़ गया, बढ़ता गया।

अन्तराल



४

पुरैना बाँसी से मिला ही हुआ समझा जाता था; वैसे बाँसी क़स्बे से उस गाँव का फैसला डेढ़ मील का था। उस गाँव में मुख्यत: ब्राह्मणों की आबादी थी; और वह भी गर्ग-वंश के शुक्लों की। उन की वंशावली, इतिहास, और उन की संस्कृति पुरैना गाँव की थाती थी। उनके अतिरिक्त वहाँ कुरमी, भर, पासी-चमारों की बस्ती के साथ नाई, धोबी, कहार-कुम्हार आदि पाँचो पौनी के भी घर थे।

वहाँ के ब्राह्मणों का सामाजिक प्रभुत्व पुरैना गाँव पर ही नहीं, बल्कि उन की धाक पास के तमाम छोटे-छोटे गाँवों, पुरवों, पट्टियों और यहाँ तक कि बाँसी-क़स्बे पर भी थी। पुरैना के ब्राह्मण, यद्यपि दो प्रतिशत भी शिक्षित नहीं थे, लेकिन अपने कुल-परिवार की पुरानी परम्परा, दिखावे के सामाजिक आदर्शों के प्रकाश में वे उस क्षेत्र के पूज्य थे। पूरे गाँव के घर-घर का ब्राह्मण पास-दूर के किसी-न-किसी गाँव का पुरोहित था।

और स्वयं समूचा पुरैना गाँव !

अपने को सर्वत्र सामाजिक नियन्ता समझने की स्पृहा उन्हें इतनी रूढ़ियों में जकड़े बैठी थी कि उन्हें खुलकर साँस लेना भी दुष्कर था !

सुभागी की माँ जमुना, इसी पुरैना गाँव की विधवा-ब्राह्मणी थी। उसका घर, गाँव के बीचो-बीच था; लेकिन जमुना जैसी विधवा-ब्राह्मणी का गाँव के बीच में रहना कितना अपशकुन पूर्ण और गाँव की मर्यादा के विरुद्ध था !

सुभागी वर्ष भर की न हो पायी थी कि गाँव के ब्राह्मणों ने जमुना को उसके घर से निकाल कर गाँव के एक सिरे पर, उसे दूसरे घर में बसा दिया और जमुना को विवश होकर वहाँ रहना पड़ा।

जमुना रोयी बहुत; इतना रोयी कि गाँव के लोग तंग आ गए, लेकिन फिर वह चुप हो गयी। रोने के लिए भी तो शक्ति चाहिए ! जमुना में वह शक्ति न रही और वह अपने जीवन में केवल सुभागी को अंक में छिपाए अकेली रह गयी। गाँव भर की उपेक्षा, प्रतारणा के बीच वह मरी नहीं, क्योंकि उसकी गोद में सुभागी थी और सुभागी का दूध उसके आँचल में था; जिसे पूरा का पूरा उसे पिलाना था। अनबोलते—दूध मुँहों के प्रति विश्वासघात करना वह बहुत बड़ा पाप समझती थी। इस सत्य को उस ने अपनी माँ के मुँह से बार-बार सुन रक्खा था। उसी स्थिति में जमुना दो वर्ष तक वहाँ रहीं।

एक रात, जब जमुना अपने पुराने घर से गाँव के सिरे पर, अपने नये घर पर आ रही थी, माधोबाबा की गली में सुमेसर ने उसकी बाँह पकड़ ली। जमुना उग्र हो गयी और सुमेसर को उसने इतना पीटा कि वह कहीं मुँह दिखाने लायक न रह गया। लेकिन उस गली में प्रतिशोध

की ज्वाला में जलता हुआ सुमेसर जमुना के भविष्य में इतना भयंकर डर बन गया कि जमुना को उसी रात, पुरैना छोड़ देना पड़ा।

उस समय सुभागी ढाई वर्ष की हो चुकी थी। जमुना उसे अपने अंक में लिए हुए पुरैना से बाँसी आयी। बाँसी कस्बे में वह दो रात और दो दिन भूखी रही। दिन भर कहीं काम ढूढ़ती और रात को किसी के सूने बरामदे, दरवाजे पर सो जाती।

प्रातःकाल था। जमुना नन्ही सुभागी को उँगली के सहारे पकड़े हुए धीरे-धीरे कस्बे में दक्षिण की ओर बढ़ रही थी। उस समय जमुना अपने आप में रो रही थी। बहते हुए आँसुओं से उस का सूना आँचल भीगता जा रहा था। सुभागी बार-बार अपनी रोती हुई माँ को देख रही थी और उसके नन्हे फूल से पाँव धूल में बढ़ते जा रहे थे।

एकाएक जमुना की दृष्टि सामने छायादार पीपल के वृक्ष के तले जा पड़ी। जमुना ने देखा, पीपल के तले कोई साध्वी स्त्री बैठी हुई किसी देवता का पूजन कर रही थी। वह खड़ी हो गयी और निश्चेष्ट रोती हुई उसे अपलक देखने लगी।

पूजन समाप्त करके उस स्त्री ने जमुना को देखा और वह अनायास समवेदना से अभिभूत, उसके पास चली आयी। अब जमुना के आँसुओं का बाँध एकाएक टूट गया। और उसके टूटने में करुणा का इतना आवेग आ गया कि सामने खड़ी हुई स्त्री उस में बह गयी। वह स्वयं रोयी और जमुना के आँसुओं में डूब गयी।

जमुना ने बताया कि वह विधवा ब्राह्मणी है। कहीं शरण चाहती है। वह चौका वर्तन भी कर सकती है, उम्दा खाना बना सकती है और किसी के भी बच्चों को सम्हाल सकती है। इसके बदले में उसे बस, इतनी ही की अपेक्षा है; खाना, तन ढकने को कपड़ा, और अपनी थोड़ी-सी मर्यादा की रक्षा, बस।

जमुना को स्त्री ने अपने सँग लिया और वह सामने बढ़ने लगी। रास्ते में स्त्री ने अपना परिचय देते हुए बताया कि उसका नाम सत्यवती है। वहाँ के तहसीलदार की वह पत्नी है। जमुना की भाँति उसकी भी गोद में तीन वर्ष का एक पुत्र है।

पथ में जमुना सत्यवती से सहर्ष स्वीकार करती चल रही थी कि वह खाना भी बनायेगी, सेवा भी करेगी और बच्चे को भी सम्हालेगी।

जमुना एक बार फिर से जी गयी। उसे पुनः ईश्वर पर विश्वास हो गया। उसका जो कुछ टूटा था, उसने अपने से समझौता कर लिया कि सब कुछ जुड़ गया। सत्यवती के विशाल-हृदय में उसे वे सब वस्तुएँ मिल गईं; जिनसे जिया जा सकता था। जमुना छाया की भाँति सत्यवती के साथ रहती। जमुना उन्हे वंती जीजी कहने लगी और उसे स्वयं पंडित की संज्ञा मिली। ढाई वर्ष की सुभागी को तीन वर्ष का आनन्द सुग्गी कह कर पुकारता, उसे पीटता और स्वयं पिट भी जाता। सुभागी उसे नन्नू कहती और जब तक दोनो सो नहीं जाते, वे हमेशा एक दूसरे के साथ रहते-खेलते और ऊधम मचाते।

वंती जीजी की छाया में रहते-रहते जमुना को छः महीने बीत गए होंगे। गर्मी की एक दोपहरी में वंती जीजी अपने कमरे में रामायण पढ़ रही थी और जमुना पास बैठी, मंत्रमुग्ध होकर सुन रही थी। भीतर बरामदे में सुग्गी और नन्नू लकड़ी के एक घोड़े को लिए हुए खेल रहे थे।

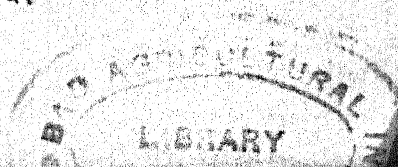
दोनो के बीच में लकड़ी का घोड़ा था। नन्नू के हाथ में छोटा-सा चाबुक था। सुग्गी के हाथ में उसकी नयी गुड़िया थी, जो अभी तक कुआँरी थी। नन्नू कह रहा था कि सुग्गी अपनी गुड़िया को उसके घोड़े

पर बिठा दे और वह बहादुर घोड़ा, गुड़िया को अपनी पीठ पर बिठाए हुए उसके लिए दूल्हा ढूढ़ निकालेगा। सुग्गी इस प्रस्ताव को स्वीकार करने से दूर भाग रही थी। वह नन्नू से हठ कर रही थी कि उस की गुड़िया क्यों अपनी ओर से अपना दूल्हा ढूढ़ने जाये? क्यों नहीं उसके लिए उसका दूल्हा घर ही आये! यह कह कर, वह अपनी गुड़िया के रूप-सिंगार की प्रशंसा में लग जाती। तब नन्नू बिगड़ जाता कि क्या उस का घोड़ा अच्छा नहीं है। वह भी तो बहुत सुन्दर है। कितना बहादुर लगता है! तना हुआ सीना, खड़े कान, बड़ी-बड़ी आँखें। फिर उसने सुग्गी से प्रस्ताव किया कि क्यों नहीं वह अपनी गुड़िया की शादी उसके घोड़े से ही कर देती? घोड़ा तो गुड़िया के घर ब्याह करने आया है।

इस प्रस्ताव पर एकाएक सुग्गी रोने लगी और उसने गुड़िया को अपने अंक में छिपाते हुए नन्नू के घोड़े को हाथ से मार कर ज़मीन पर गिरा दिया। फिर नन्नू को बहुत धक्का लगा। उस ने गुस्से में आकर तत्काल चाबुक से सुग्गी की गुड़िया पर चोट की। गुड़िया को सुग्गी ने अपने अंक में छिपा लिया था, अतएव नन्नू के चाबुक की पूरी चोट सुग्गी के माथे से अंक तक छीलती चली आयी और वह चीख़ उठी।

नन्नू भागा हुआ माता जी के कमरे में घुस गया और बिना कुछ बोले-चाले वह पंडित की गोद में अपना सर छिपा कर घबड़ाया हुआ लम्बी-लम्बी साँसें लेने लगा। बरामदे में सुग्गी चीख रही थी। वंती जीजी को स्पष्ट हो गया कि क्या घटना हुई होगी। दौड़ी हुई वे बरामदे में गयीं, सुग्गी को गोद में उठा लिया और कमरे में वापस लौट आयीं। नन्नू अब तक पंडित की गोद में अपना सर गड़ाये, चुप-चाप पड़ा था।

वंती जीजी ने सुग्गी को अपने पलँग पर बिठा दिया और स्वयं बढ़ कर पंडित की गोद में से नन्नू का सिर ऊपर उठा कर वे जैसे, डाँटती



हुई कुछ पूछने को हुई; पंडित ने नन्नू को अपनी बाहों में छिपाते हुए कहा, कि नन्नू ने सुग्गी को नहीं मारा है। सुग्गी ने बदमाशी की होगी तब मेरे बेटे ने थोड़ा-सा डाँट दिया होगा, बस! यह तो ऐसे ही रोती है।

सुग्गी अब तक चोट के दर्द से सिसक रही थी। उस के माथे पर चाबुक का प्रहार स्पष्ट हो कर सूज आया था। वंती जीजी ने जब सुग्गी के माथे पर उस चोट को देखा तब वे नन्नू पर गुस्से से लाल हो गयीं, लेकिन उस समय तक पंडित, नन्नू को अपनी गोद में छिपाये बाहर जा चुकी थी।

वंती जीजी की आँखें समवेदना से डबडबा आयीं। चोट पर औषधि लगाकर वे सुग्गी को चुप कराने लगीं।

पायताने सोयी हुई सुग्गी ने थोड़ी देर के बाद रोना बन्द कर दिया था, लेकिन थोड़ी-थोड़ी देर पर उसे एक ऐसी लम्बी सिसकी आती थी; जिसे वह साँसों के साथ भरती हुई सर से पाँव तक कँप जाती थी। उसकी आँखें मुदी थीं और वंती जीजी धीरे-धीरे उसे पंखा झल रही थीं। थोड़ी देर के बाद सुग्गी सो गयी। लेकिन उसके भीतर से उठती हुई सिसकियाँ अब तक कभी-कभी उसकी साँसों के साथ उभर आती थीं और सुग्गी उस क्षण कँप जाती थी।

जब सुग्गी बेखबर सो गयी; फिर जमुना मुस्कराती हुई नन्नू को गोद में लिए हुए कमरे में आयी। उसने देखा, वंती जीजी का मुँह उदास था। पंडित चुपचाप आकर पास खड़ी हो गयी।

"पंडित तूने बदमाश नन्नू को मारा नहीं!" वंती जीजी ने क्रोध पीते हुए कहा, "देखती नहीं, इस के माथे पर कितनी चोट लग गयी है!" पंडित स्नेह से मुस्करा पड़ी। उस ने वंती जीजी को मनाते हुए कहा, "छोड़िए भी जीजी! अब तो सुग्गी सो गयी, अब किस बात की चिन्ता!"

"नन्नू ने मेरी सुग्गी को क्यों इस तरह मारा?"

जमुना अब खिलखिला कर हँस दी। उसने जीजी को वह सारा क़िस्सा सुनाया, जिसे नन्नू ने अभी उसे साफ़-साफ़ बताया था, कि किस तरह सुग्गी अपनी नयी गुड़िया के विवाह ढूँढने की चिन्ता में पड़ी थी। नन्नू ने प्रस्ताव किया कि सुग्गी अपनी गुड़िया की शादी उसके काठ के घोड़े से कर दे। सुग्गी इस पर बहुत बिगड़ी और उसने गुस्से से नन्नू बेटा के घोड़े को ज़मीन पर गिरा दिया, इस पर नन्नू बेटा ने सुग्गी को मारा! फिर क्या बेजा किया?

"क्या बेजा किया!" वंती जीजी ने नन्नू को गुस्से से घूरते हुए देखा, "बड़े लाट साहब बन कर आए हैं, जो इनके घोड़े का ब्याह अपनी गुड़िया से न रचाए; उसे ये पीट देंगे!"

इस पर सहसा नन्नू फफक कर रो पड़ा और पंडित उसे सम्हालती हुई कमरे से बाहर चली गयी।

दो घंटे के बाद, दिन ढल गया। सुग्गी जब सो कर उठी वह नन्नू को ढूढ़ने लगी; जैसे, उसे वह सब कुछ भूल गया था। जब सुग्गी नन्नू से मिली तब सुग्गी को तो सब कुछ भूल गया था, लेकिन नन्नू को सब कुछ याद था। सुग्गी उस से खेल की बातें कर रही थी; लेकिन नन्नू चुप था और वह बार-बार उसके माथे की चोट देख रहा था।

नन्नू उसे अपने कमरे में ले गया। उस ने उसे वह तस्वीरों वाली किताब दे दी, जिसे अभी कल तक वह सुग्गी से चुराता फिरता था। उसने उसे वह जगह भी बता-दी, जहाँ वह अपनी गेंद छिपाकर रखता था।

दूसरे दिन, जब वे फिर खेलने लगे, उस समय उन दोनो के बीच

केवल कागज़ की एक डोली थी। उन दोनो ने एक ही क्षण में यह तै किया कि गुड़िया की शादी उस गुड्डे से क्यों न कर दी जाय, जो बाराकुआँ के मेले से खरीद कर आया था; यद्यपि उसे खेलते-खेलते उन दोनो ने उसके दोनो हाथ तोड़ रक्खे थे।

गुड्डी-गुड्डा लाए गए। उन दोनो ने बड़ी प्रसन्नता से उन्हें डोली पर बिठाया और दोनों ने अपनी-अपनी उँगलियों के सहारे डोली उठायी।

डोली लिए हुए, बरामदे से आँगन में उतरती हुई मुन्नी हँसती हुई अपनी तोतली वाणी में गाने लगी—"डोली ढोओ ले कँहलवा—डोली ढोओ ले कँहलवा।" नन्नू ने भी हँसते हुए उस गीत में अपना सहयोग दिया और दोनों की मिली हुई तोतली वाणी से उनके गीत की गति आगे बढ़ गई—

"डोली ढोओ ले कँहलवा,
नेकी मलबै तुहाल।"

आँगन भर में घूमती हुई उनकी डोली अंत में उनके छोटे से मिट्टी के घर पर उतरी, जिसका नाम उन्होंने 'घर घरौंदा' या 'घल-घलौंदा' रख छोड़ा था।

डोली घर-घरौंदे के द्वार पर उतारी गयी और दूल्हन-दूल्हे के साथ घरौंदे के भीतर पहुँचायी गयी। और वे दोनों इस तरह खुलकर हँसने लगे; जैसे, उन्हें न जाने क्या मिल गया।

वे दोनों घर-घरौंदे में झाँक-झाँक कर बेतरह हँसते जा रहे थे और बरामदे में खड़ी-खड़ी जमुना और वंती जीजी मुस्करा रही थीं।

इस तरह बाँसी में मुन्नी और नन्नू को एक साथ खेलते हुए पाँच वर्ष बीत गए। अब मुन्नी पूरे साढ़े सात वर्ष की हुई और नन्नू आठ वर्ष

का हुआ। इस बीच में उन दोनों ने कितनी लड़ाइयाँ कीं, कितना रोए-हँसे, रूठे, मने, कितने व्याह रचाए, कितने घर-घरौंदे फोड़े और कितनी खुशियाँ एक को दूसरे से मिलीं; यह सब उनकी आँखों में झाँक रहा था।

आनन्द अंग्रेजी की पाँचवी कक्षा में पढ़ने लगा। सुभागी को वंती जीजी घर ही पर स्वयं पढ़ाती थीं, और उसे तब तक हिन्दी पढ़ना और लिखना दोनों आ गया था। आनन्द सुभागी को आज्ञा देता और सुभागी उसकी आज्ञा पालन करने में फूली न समाती।

दस बजे आनन्द जब स्कूल जाने लगता, तब सुग्गी किताब काँपियों से भरे हुए चमड़े के बैग को उसके कंधे पर. लटका देती। और जमुना नाश्ते से भरे हुए छोटे से कटोरदान को रूमाल में बाँधकर उसके दाएँ हाथ में पकड़ा देती। आनन्द ताँगे पर बैठ कर स्कूल जाने लगता और सुभागी बँगले के बरामदे में खड़ी-खड़ी उसे तब तक देखती रहती जब तक आनन्द का ताँगा उसकी दृष्टि से ओझल नहीं हो जाता।

अकेली दिन में, वह वंती जीजी की सेवा करती। उन्हें पूजा कराने का सारा दायित्व उसने अपने ऊपर ले रक्खा था। वंती जीजी उस से रामायण पढ़वाती, और स्वयं वे उसका अर्थ बतातीं।

एक बार वंती जीजी अशोक बाटिका के प्रसंग को लिए हुए उसका अर्थ सुभागी को समझा रही थीं। 'जानकी जी अपने पति राम के वियोग में कितना दुखी और विह्वल हैं।' इस पर सुभागी ने सहसा पूछा, "सीता जी ने राम के पास चिट्ठी क्यों नहीं भेज दी, या तार मार देंती।"

वंती जीजी के बहुत समझाने पर भी उसे स्थिति स्पष्ट न हुई।

लेकिन उसी वर्ष, पूस उतरते-उतरते तहसीलदार कामता प्रसाद

का बाँसी से तबादला हो गया। ज़िले से बाहर उन्हें गोंडा जाने की सरकारी आज्ञा मिली।

जमुना ने वंती जीजी से संकल्प कर लिया था कि वह जीवन-पर्यन्त उन्हीं के चरणों में बैठ कर अपने दिन प्रसन्नता-शान्ति से व्यतीत करेगी। सुभागी को तो कभी यह पता भी न था कि वंती जीजी उसकी नहीं हैं; उसे इसका भी ज्ञान न था कि आनन्द और वह दो हैं। उस ने कभी सोचा तक भी न होगा कि तहसीलदार साहब सरकार के व्यक्ति हैं, वे सदा बाँसी न रहेंगे, या अगर बाँसी छोड़ कर कहीं जायँगे तो उसे साथ न ले जायँगे।

जमुना वंती जीजी का छाया छोड़ने के लिए किसी भी मूल्य पर तैयार न थी। वह तो यहाँ तक कहती थी कि वह सुभागी को लिए हुए बाँसी से गोंडा तक पैदल चली जायगी। वंती जीजी दिल से चाहती थी कि वे अपने साथ ही जमुना और सुभागी को गोंडा ले चलें। लेकिन तहसीलदार साहब इससे पूर्ण सहमत न थे। उन का कहना था कि पहले केवल वे ही लोग गोंडा चलें; नयी-नयी जगह है; वहाँ जब सब ठीक-ठाक हो जाय; तो शीघ्र ही वे जमुना और सुभागी को अपने पास बुला लेंगे।

५

सुभागी को लिये हुए जमुना बाँसी से पुरैना की ओर वापस जा रही थी; और वह अपने मन-ही-मन रोती जा रही थी। यद्यपि उसे पूर्ण विश्वास था कि वंती बीजी, तहसीलदार साहब एक ही हफ्ते में उसे गोंडा—अपने पास निश्चित रूप से बुला लेंगे।

लेकिन बाँसी से पुरैना की राह पर उसे न जाने क्यों ऐसा लग रहा था कि जैसे, वह फिर अकेली हो गयी, कोई बहुत सुन्दर भावना, माँ के हृदय की तरह महान् कोई घनीभूत छाया, जिसके तले वह फिर से जी कर खड़ी थी, वह सब कहीं दूर हटता जा रहा था।

संध्या-बेला थी। जमुना उदास चिन्तित-मौन, पुरैना के पथ पर बढ़ रही थी। रास्ता उसे साँप की तरह डँस रहा था। उस ने इस की कल्पना छोड़ रक्खी थी कि उसे कभी पुरैना के उस रास्ते से वापस लौटना पड़ेगा; जिस रास्ते से वह रोती हुई; रात के अँधेरे में भाग कर बाँसी आयी थी।

तब, उस बार सुभागी माँ की गोद में चल कर पुरैना से बाँसी आयी थी। अब, इस बार वह माँ के पीछे-पीछे धरती पर चलती जा रही थी। वह माँ से बार-बार पूछ रही थी कि 'वे कहाँ जा रहे हैं ! और हम कहाँ जा रहे हैं ! वंती जीजी के पास अब लौट चलो न माँ ! आनन्द बाबू कह रहे थे कि हम रेलगाड़ी पर चढ़ेंगे, तुम नहीं चढ़ने पाओगी; चलो माँ, हम लोग भी दौड़ कर रेलगाड़ी पर चढ़ जायँ।'

जमुना चुपचाप रास्ते पर चली जा रही थी। उस की आँखों में समूचा पुरैना गाँव, उस की समूची संस्कृति की तस्वीर चल रही थी। उसकी आँखों में वे सब लोग चल रहे थे; जिन्होंने उसे एक-एक करके पत्थर मारा था। सुभागी पूछती जा रही थी, 'कि माँ तू बोलती क्यों नहीं ? वंती जीजी ने मुझे यह रुपया क्यों दिया है ? क्या होगा यह ? ..तू वंती जीजी के गले से लग कर रो क्यों रही थी ?...बोलती क्यों नहीं ? जाओ हम भी नहीं बोलेंगे !"

यह कहते-कहते सुभागी रूठ कर वहीं रास्ते पर बैठ गयी। वह हठ करने लगी और बात-ही-बात में रोने लगी। जमुना ने उसे मनाया नहीं, कुछ कहा नहीं, बल्कि वह भी खुल कर रो पड़ी।

अंधकार घना होता जा रहा था। जमुना सुभागी की ऊँगली पकड़े हुए गाँव के समीप पहुँच रही थी। उसे संतोष था कि रात का घना अंधकार है और वह उसी अंधकार में पुरैना गाँव में प्रवेश करेगी। उसे कोई देखेगा नहीं, न उस से कोई बातें करेगा। जमुना सोच रही थी कि वह पूरब वाले आम के बाग के पीछे से गाँव के उत्तर पहुँच जायगी। धीरे से घर का ताला खोलेगी और घर में छिप जायगी।

दूसरे दिन थोड़ा-सा दिन चढ़ते-चढ़ते, पुरैना गाँव में यह बात

फैल गयी कि जमुना खूब कमा कर कस्बे से गाँव लौटी है। कितनी मोटी हो गयी है, रंग देखो, कितना निखर आया है। तहसीलदार साहब के यहाँ से खूब पैसा भी गाँठि होगी। और उसकी छोकड़िया को तो जरा देखो, कितनी सयानी हो गयी है! टपे-टप् बातें करती है!

सुबह उठते ही जमुना घर की सफाई में जुट गयी। कई जगह घर गिर रहा था, कई जगह दीवारें कट गयी थीं। चारो ओर धूल, मकड़ी के जाले और गर्द-गुबार से घर पटा हुआ था। अबाबीलों ने जगह-जगह मिट्टी के घोंसले बना रक्खे थे। गौरय्यों के घोंसलों से तो नाक में दम था।

जमुना ने किसी के भी घोंसले पर हाथ न लगाया। वह फाँड़ बाँध, कमर कस कर पूर घर को साफ करने में लगी थी। सुभागी पूछती, "हम तो गोंडा जायेंगे! फिर इस घर की इतनी सफाई क्यों कर रही हो?"

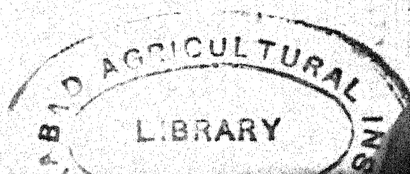
जमुना उदासी से उत्तर देती—'बेटी यह अपना घर है! कितने दिनों पर हम लोग अपने घर में आए हैं; इसे ठीक ठाक कर दें न! नहीं तो गिर जायगा!"

"इस घर को ठीक कर के हम लोग वंती जीजी के यहाँ चलेंगे न, ?" सुभागी माँ के काम में तेजी से हाथ बँटाती हुई वह पूछ रही थी, "क्या वंती जीजी हमारे इस घर में नहीं आयेंगी?"

जमुना चुप थी और सुभागी प्रश्न कर रही थी, "तो माँ हम लोग गोंडा जाएँगे और कुछ दिनों के बाद हम फिर इसी घर में वापस आ जायेंगे न?"

जमुना के पास इन प्रश्नों के कोई उत्तर न थे। वह चुपचाप घर के बंदोबस्त में लगी थी। क्षण भर का अवकाश न वह अपने मन को दे रही थी, न अपने शरीर को।

गाँव की औरतें एक-एक, दो-दो, चार-चार जमुना से मिलने



आ रही थीं, उसे देखने आ रही थीं, लेकिन जमुना ने अपने को, अपनी सम्पूर्णता को इस तरह घर के बन्दोबस्त में लगा दिया था कि भेंट-अकवार, राम-जुहारी, पाँव-पैलगी के अतिरिक्त उसे इतनी फुर्सत ही नहीं थी कि वह लोगों से अपनी कहे, उन की सुने, स्वयं रोए और उन्हें रुलाए।

फिर भी जमुना का व्यक्तित्व गाँव की दुपहरी में सब की वाणी, सब के दृष्टि बिन्दु का उपजीव्य बन चुका था। सब स्तर, सब दिशाओं में वह आलोच्य-विषय बनकर गाँव की दुपहरी में फैली हुई थी। क्योंकि अब जमुना के व्यक्तित्व में एक ही संधि बिन्दु पर सब कुछ उपलब्ध था—वह विधवा थी, वह जवान तो नहीं, फिर भी अब तक आकर्षक थी, वह ब्राह्मणी थी, और पिछले पाँच वर्ष तक उस ने तहसीलदार कामता प्रसाद, जो जाति के क्षत्री थे; उन के यहाँ खाना बनाने की नौकरी की थी।

वह माँ भी थी। सुभागी जैसी सात-आठ साल की कुमारी लड़की उसके सामने थी। और सबसे बड़ी बात, वह कैसे अपने आप, गाँव छोड़ कर चली गयी थी, और कैसे अब क़स्बे से गाँव लौटी है!

जमुना सब की सुनती थी, पर कुछ बोलती न थी। उसे अपने सत्य पर अधिक भरोसा था और उस से भी अधिक उसे वंती जीजी पर विश्वास था। वंती जीजी को वह अपने मन-ही-मन में माँ मानती थी और कभी-कभी वह अपने आप में वंती जीजी को याद कर माँ कहकर पुकार भी उठती थी।

इसलिए जमुना कमर कसे, निश्चिन्त, स्वस्थ मन से अपने घर में काम करती हुई वंती जीजी के पत्र की अनन्त प्रतीक्षा कर रही थी।

सात दिन बीत चुके, वंती जीजी का पत्र न आया। नित्य डाकिये

का रास्ता देखते-देखते उस की आँखें पकने लगी, लेकिन फिर भी वह निराश न थी। उस ने एक जवाबी कार्ड वंती जीजी के पास भेजा और निश्चिन्त हो गई कि चार ही दिनों में उसके पास जीजी का पत्र आ जायगा।

जमुना दिन-रात स्वप्न देखती थी कि वंती जीजी उसे गोंडा बुलायेंगी। वह पुरैना को फिर छोड़ कर उन के पास चली जायगी और उसका शेष जीवन उन के चरणों में बैठ कर कट जायगा।

लेकिन पन्द्रह दिन बीत गए, गोंडा से कोई खत न आया। जमुना मन-ही-मन पागल होने लगी और उस ने फौरन पदारथ काका के हाथों वंती जीजी के पास जवाबी तार दिया। तार तो आएगा ही उसे कौन रोक लेगा!

और गोंडा से तार आया। वंती जीजी का दिया हुआ नहीं, बल्कि वंती जीजी के विषय में दिया हुआ तार मिला, कि 'परसों वन्ती जीजी का स्वर्गवास हो गया।'

तार पढ़ाते ही जमुना कटे वृक्ष की भाँति गिर पड़ी। वह रोयी नहीं, सर-छाती पीटने की शक्ति उसमें न रही। उसे एकाएक ऐसा लगा, जैसे किसी ने एक ऊँचे टीले के शिखर से बहुत जोर का धक्का दे कर उसे नीचे गिरा दिया हो, बहुत नीचे; ऐसी सख्त कंकरीली जमीन पर जो युगों से बाँझ है—जिस पर घास का एक तिनका नहीं उगता; जहाँ कोई जीव जन्तु नहीं—चारों ओर सन्नाटा है। जहाँ हवा के झोंके अनायास धरती के सूनेपन से टकराते हैं और एक अजीब भयानक शोर जहाँ हरदम फैलता रहता है। और उसके पूरे विस्तार में धूल, रेह और छोटी-छोटी कंकड़ियाँ सदा उड़ती रहती हैं।

पूरे सप्ताह तक अबोध सुभागी वंती जीजी का नाम ले-लेकर रोयी फिर चुप हो गयी। जमुना महीनों मन-ही-मन रोयी, उसे एक बार फिर

लगा, और इस बार बहुत भयानक ढंग से लगा कि वह विधवा है, निःसहाय है। उस के माँ-बाप नहीं हैं। नैहर भी उजड़ गया है। उस का कोई नहीं है, वह अकेली है-बिल्कुल अकेली। और इतनी शीघ्रता से उस के शरीर की सारी मांसलता, आकर्षण, द्वन्द्व और चिन्ता की आग में भस्म हो गए कि, जैसे कोई फूल सहसा डाल से तोड़ दिया गया हो। पुरैना गाँव इस बात को भी लेकर कई दिनों तक चर्चा करता रहा कि उस तार के मिलने के बाद से ही जमुना कितने जल्दी ढह गयी। वह तो एक तरह से बुढ़िया लगने लगी।

जमुना रात के सूनेपन में जब सोने लगती; उस समय उस के ओंठ अनायास कँप उठते, वह निःश्वास भरती हुई वंती जीजी को बार-बार माँ कह कर पुकारती। और रो देती। और आँसुओं में डूबी हुई आँखों में वह सो जाती; फिर वंती जीजी उसे नित्य प्रति भोर के स्वप्न में मिलतीं रामायण पढ़ती हुई और उस के अर्थ समझाती हुई। हँसती हुई वे अपनी बातें दुहरा जातीं कि 'देखना पंडित! घबड़ाना नहीं, अपने पर विश्वास करना। तुम में ईश्वर की शक्ति है, उस का अंश है तुम में, फिर हार क्यों? चिन्ता किस की?

वंती जीजी फिर मुस्कराती हुई कहतीं--'देखना पंडित! सुभागी का पाँव मैं पूजूंगी। मैं कहीं भी रहूँ तो भी मैं उस का व्याह रचाऊँगी। पैसे की चिन्ता न करना पंडित! मैं मदद दूँगी तुझे! बेटी के पाँव पूजने को मिले कहाँ, और फिर सुग्गी ऐसी बेटी!'

यह कह कर वंती जीजी चलने लगतीं जमुना नींद में दौड़ती हुई उन्हें अपने अंक में बाँध रखने के लिए तड़प उठती और नींद में उस के दोनों हाथ हवा में फैल जाते और जमुना की आँखें खुल जातीं।

आँख खुलने पर वह कुछ क्षणों के लिए अवश्य रो देती, लेकिन दूसरे ही क्षण उस में अज्ञात ढंग से धीरे-धीरे स्फूर्ति आने लगती, भीतर

कुछ आग्रह करके मचल उठता, फिर उसमें शक्ति आ जाती।

तड़के भोर ही में वह घर के कारोबार से निवृत्त हो कर अपने दो बैलों का सानी-भूसा करती और पदारथ काका को साथ लेकर अपने खेतों में चली जाती।

पहर भर दिन चढ़ते-चढ़ते जमुना फिर अपने घर लौट आती। उस समय तक सुभगी दरवाजे पर झाड़ू डाल देती, लकड़ी गोइठें को चौके में रखकर स्नान करती और भोजन बनाने की तैयारी में लग जाती। दोपहरी में जमुना रँगी हुई मूज से मौनी, पेटरिया और डलवे बिनती और स्वप्न देखती जाती कि सुभागी का किसी अच्छे कुलीन ब्राह्मण के घर मंगल-व्याह होगा। वह सब कुछ सुभागी के पाँव पूज कर उसे दे देगी। उसके डोले में सुहाग की पिटरिया के साथ-ही-साथ उसे एक भार मौनी, मौना, डलिया और डलवे देगी, फिर शान्ति से वह मर जायगी।

६

सुभागी सोलह वर्ष की हुई। रूप, तरुणाई और कमनीयता के भार से वह धीरे-धीरे झुक गई और दौड़ कर-उछल कर चलती हुई सुभागी अब सम्हल-सम्हल कर चलने लगी। आँचल ऊपर से फैलकर कमर में बहुत ही सावधानी से बँध गया। खुले हुये गंदे पैर, गन्दी हथेलियाँ और मट-मैले गले में एक अजीब आकर्षण और स्निग्धता आ गयी। वाणी में संकोच की पवित्रता और चाल में एक अज्ञात गरिमा आगयी। बचपन का धूमिल वर्ण धीरे-धीरे गेहुआँ हो गया। काली-बड़री-आँखों की पलकें संकोच-राग और झिझक से भारी पड़ गईं, और सुभागी स्वयं अपने से लजाने लगी। अज्ञात यौवन के अल्हड़पन पर भोली गम्भीरता की रंगीन रेखायें इस तरह बिखर गयीं; जैसे, किसी जंगली गुलाब के फूल पर एकाएक सुबह की हवा डोल गयी हो।

पिछले कई महीनों से जमुना की कमर में बराबर पीड़ा रहने लगी। वह अब सदैव कराह कर उठती और कराह कर बैठती। और उस पर

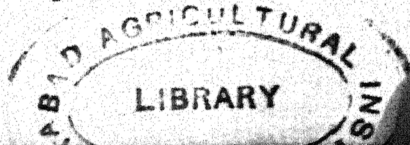
सुभागी के विवाह की चिन्ता उसके सर पर इस तरह आ पड़ी थी, जैसे, किसी हरे पेड़ की एक मोटी डाल उसके सीने पर ला कर रख दी गयी हो; और जिसे ढोती हुई जमुना इधर-उधर के गाँवों में मारी-मारी फिरती हो कि कोई दयालु ब्राह्मण उसके सीने के भार को उतार ले।

जमुना अपने भावी दामाद को सर्वस्व दे देगी। अपने सब गहने, दोनों गायें, दोनों बैल और उत्तर वाले बाग के वे पाँचों आम के पेड़ भी संकल्प कर देगी; जिन्हें जमुना के दिवंगत पति ने अपने हाथों लगाया था।

जमुना ने घर पर रहने तथा देखने के लिए दूर के एक ममेरे भाई को घर पर रख छोड़ा था; और स्वयं परसाद नाऊ को लिए हुए वह अपनी बेटी का वर ढूँढ़ रही थी। लगातार तीन महीने की दौड़-धूप और अतिशय परिश्रम के बाद उस ने गोपालपुर में बात पक्की कर ली; और जमुना जैसे, जी गयी।

लेकिन जिस पक्ष में वहाँ तिलक चढ़ने को थी, उस पक्ष के आरम्भ में ही शादी की बात एकाएक टूट गयी। जमुना ने तत्काल वहाँ पदारथ काका और परसाद नाऊ को दौड़ाया, परन्तु दूसरे दिन वे निराश लौट आए और साथ ही एक बहुत भयानक खबर लाये। गोपालपुर वाले से न जाने किस ने यह कह दिया था कि सुभागी जमुना के पति रामतीरथ शुक्ल से पैदा हुई नहीं है। उन से किसी ने यह बताया है कि रामतीरथ की मृत्यु के पूरे दो वर्षों के बाद जमुना की विधवा गोद में सुभागी आयी थी।

जमुना को यह बात इतनी भयानक लगी; जैसे, किसी ने उस के सर पर एक बहुत वजनी हथौड़ा मार दिया हो। वह कई दिनों तक, जैसे बेहोश रही और वह इधर-उधर अपने खेतों में, अपने घर में, पति के लगाए हुए आम के बाग़ में पागल हिरनी की भाँति डोलती रही।



उस के मन ने एक बार कहा कि वह पुरैना गाँव में एक सिरे से आग लगा दे और पूरा गाँव जल कर भस्म हो जाय, लेकिन दूसरे मन ने उसे समझाया कि विधवा का प्राश्चित ही यही है कि वह अपने सत्य के लिए सत्य पर ही अड़ी रहे। वह असत्य से सतत् संघर्ष करती रहे और उस दिन की प्रतिक्षा करती रहे जिस दिन उसका सत्य एक भयानक उल्का बन कर असत्य के सम्पूर्ण विस्तार को अपने क्रोड़ में समा ले।

लेकिन सत्य से असत्य कितना शक्तिशाली और भयानक है, जमुना इसे सोचती हुई बार-बार अशान्त हो जाती थी। वह कितना अकेली है. निरालम्ब-काँटो के बीच में, यह कटु सत्य उसे और भी थका देने वाला था।

उसे पता लगा कि पुरैना गाँव के किन-किन पट्टीदारों ने असत्य की उस भयानक दीवार को खड़ी की थी उन में से एक वह पट्टादार था; जो जमुना के स्वावलम्बन आत्म-सम्मान से ईर्षा करता था जिसकी चिन्ता यह थी कि जमुना अब तक झुकी क्यों नहीं ? उस ने अब तक अपने को मिटाया क्यों नहीं ? वह हमारे सामने रोती हुई क्यों नहीं आयी ? उसे हमारी सहायता की अपेक्षा क्यों नहीं ? दूसरा पट्टीदार वह था जो जमुना का एक और भी दूसरी तरह का आत्मसमर्पण चाहता था। एक दिन गली में उस ने जमुना का हाथ पकड़ा; उस दिन एक ने उस पर फूल फेंका, उस दिन एक ने उस से भद्दा मज़ाक किया। लेकिन जमुना ने एक-एक को क्या उत्तर दिया ? - उपेक्षा, घृणा, दुत्कार और क्रोध ही न !

जमुना अपनी इस विगत स्थिति को सोचते-सोचते चरित्र की आत्म-दृढ़ता से भर गयी। उसका विगत भयानक था, आगत भयानक के साथ-साथ कठिन था, लेकिन वह अपने अनागत की मधुर-सत्य प्रेरणा से जी उठती।

संध्या का समय था। जमुना अपने घर से निकल, उत्तर वाले बाग में गयी और पति द्वारा लगाए हुए आम के पेड़ों के बीच शान्ति से खड़ी हो गयी। दूसरे क्षण वह सामने के पतले से पेड़ को अपनी बाहुओं में भर कर रोने लगी। बहुत देर तक निश्चेष्ट रोती रही। एकाएक उसे लगा कि उसकी बाहुओं के बीच रामतीरथ-उस का पति खड़ा है और वह अपने दाएँ हाथ से जमुना के रूखे सर पर धीरे-धीरे सहला रहा है और समझा रहा है—जम्मो! मैं तो तुझे कुछ नहीं कह रहा हूँ, फिर तू क्यों रोती है ? मैं तो मानता हूँ न, कि सुभागी मेरे रक्त से है; जिसे तूने अकेले अपने आँसुओं से पाला है। मैं तेरा साक्षी हूँ सुभागी की माँ; तू नख से शिख तक सत्य है। पहले सुभागी तेरे गर्भ में आयी और फिर मैं बीमार पड़ा। रो नहीं जम्मो! तेरा सत्य महान है, अजित है। जा, अब तू घर लौट जा, सुभागी के सामने कभी न रोना! खबरदार !! नहीं तो इस असत्य का प्रभाव उस पर पड़ सकता है! ......रो नहीं. सुभागी की माँ! तू तो कितनी बहादुर है!

जमुना को लगा; जैसे, किसी ने उसके खुले हुए सर को आँचल से ढक दिया हो और वह स्वयं एकाएक कहीं हो गया हो। और जमुना पेड़ से दूर हट कर चारो ओर शून्य में, संध्या के अंधकार के परे कुछ ढूढ़ने लगी।

इसके उपरान्त तीन महीने के बीच जमुना ने शादी की बातें और भी कई जगह चलायीं, लेकिन असत्य का अभिशाप उसके आगे-आगे चलता रहा। बातें होतीं, तै होतीं और टूट जातीं।

परन्तु जमुना कहीं झुकी नहीं, उसे इस असत्य ने, लाँछना ने कहीं से भी पराजित न किया। बल्कि उस में उत्तरोत्तर दृढ़ता और तीव्रता आती गयी।

अगहन बीतते-बीतते पदारथ काका रामनगर तहसील में सिकन्दर-

पुर गाँव से एक विवाह की बात करके लौटे। उन्होंने आकर जमुना से उस वर और घर की सारी बातें बतायीं।

रामनगर तहसील से सीधे पूरब आठ मील की दूरी पर सिकन्दरपुर गाँव पड़ता है। गाँव में बीस घर ब्राह्मण हैं, पाँच घर क्षत्री होंगे, और शेष गाँव में अहीर-कुरमी, भर, पासी सब तरह के लोग बसते हैं। गाँव का सिवान बहुत फैला हुआ है और धरती खूब उपजाऊ है। रबी, भदँई और अगहनी तीनों तरह की फसलें होती हैं। गाँव का पूर्वी सिवान चौरस है, दक्खिनी सिवान सोयी है, कुछ नीची जमीन। पश्चिमी सिवान में आम-माहू-बरगद-पीपर-कटहर-नीम और शीशम आदि का घना बाग है और उसके किनारे-किनारे जमीन की एक पतली पट्टी में अरहर और बाजरे की खूब खेती होती है। उत्तरी सिवान कछार है; और इस सिवान के अंत पर गाँव का गहरा तालाब है।

वर तिवारी ब्राह्मण है और गाँव में उस का घर अच्छा बना हुआ है। उस के घर में धन-दौलत सब कुछ है, लेकिन परिवार कम है। चार वर्ष हुए छः महीने के बीच ही में माँ-बाप दोनो का ही स्वर्गवास हो गया। फिर घर में वर, बूढ़ी दादी और उसकी पत्नी यही तीन शेष रह गए। वर पहले कलकत्ते में नौकरी करता था और खूब कमाकर उसने घर भी भर दिया, लेकिन जब से घर पर माँ-बाप नहीं रहे; तब से वह घर पर ही है; क्योंकि घर पर खेती-बारी अच्छी है; उसे किसी और की देख रेख पर छोड़ कर बाहर नौकरी करने जाना, इस जमाने में अब ठीक नहीं है। इस तरह माँ-बाप के मरने के बाद लड़के के सर पर सारी जिम्मेदारी आ गयी। इसी बीच फिर क्या हुआ कि अभी पिछले साल सिकन्दरपुर गाँव में ताऊन का प्रकोप हुआ। और महारानी ने सबसे पहले उस गाँव में उसी लड़के की पत्नी को ले लिया। जब से पत्नी का स्वर्गवास हुआ, उसका हाता ऐसा धन-धान्य से भरा हुआ घर सूना पड़ा है।

"अब इस समय लड़के की उम्र क्या है ?" जमुना ने पदारथ काका से पूछा।

पदारथ काका ने लड़के की कुंडली-जन्म-पत्री जमुना को देते हुए बताया कि वर की अवस्था इस समय ज्यादा-से-ज्यादा चौबीस वर्ष की होगी और उसका नाम रामानन्द है।

जमुना ने तत्काल वर और कन्या की जन्म-पत्री को अपने पंडित से दिखवाया। पंडित ने दोनों की राशियों को जोड़ते हुए बताया कि वर-कन्या का बहुत अच्छा संयोग है। गणना भी दोनों की अच्छी ही है। यह बात जरूर है कि दोनों की राशियों में राहु प्रबल हैं, लेकिन बृहस्पति और चन्द्र दोनों अच्छे स्थानों पर हैं। इन ग्रहों का राहु पर पूरा ध्यान रहेगा। ज्योतिष बताता है कि सुभागी और रामानन्द में अगाध प्यार रहेगा और दोनों एक दूसरे को पा कर बहुत प्रसन्नता से रहेंगे।

जमुना को शान्ति मिली। पदारथ काका शादी की बात बिल्कुल पक्की कर के आए थे। लेकिन उस के मन में गाँव की लांछना की बात चोर की भाँति अपनी आँखें दिखा रही थी। पदारथ काका ने जमुना को यह निश्चित बता दिया कि रामानन्द को यहाँ की शादी बिल्कुल मंजूर है और वह तत्काल पहली ही लग्न में व्याह चाहता है। उसे लेन-देन की भी कोई बात नहीं है। वह बस, सुभागी जैसी लक्ष्मी-लड़की ही चाहता है, जो उसके उजड़ते हुए घर को बसा ले, बस। और वह कुछ नहीं चाहता। जमुना को रामानन्द की सारी स्थितियाँ; उसकी बातें पसन्द आईं; उसे व्याह हो जाने का सुन्दर भविष्य भी दिखायी दे रहा था। फिर भी वह कहीं से, किसी भी तरह से यह नहीं चाहती थी कि कोई कभी झूठा लांछना उठाए और सुभागी का जीवन विषाक्त हो। वह यह भी नहीं चाहती थी कि उसे निःसहाय, पतिता

या विधवा समझ कर, उसे और उस की सुभागी को उद्धार करने के लिए कोई अपना सम्बन्ध जोड़े।

जमुना दूसरे ही दिन पदारथ काका और अपने पुरोहित को लेकर रामनगर की ओर रवाना हो गयी। रामनगर तक वह लारी पर आयी, इसके बाद वह सिकन्दरपुर के लिए पैदल चल पड़ी।

सिकन्दरपुर से एक गाँव के फासले पर जमुना पंडित के साथ उसी गाँव के एक कुएँ पर रुक गयी और उस ने पदारथ काका को सिकन्दर-पुर, रामानन्द को बुला लाने के लिए भेज दिया।

उस समय दो घंटा दिन शेष था। जमुना ने हाथ-पैर धोकर पानी पिया और शान्ति से सिकन्दरपुर की ओर देखने लगी। पुरोहित जग्गी शुक्ल ने जमुना को सलाह दी कि क्यों न तब तक वे दोनों वहीं गाँव के लोगों से रामानन्द के घर-परिवार-स्थिति के बारे में कुछ जानकारी लें। जमुना को जग्गी की बात बिल्कुल न पसन्द आई। क्योंकि उसका विश्वास ही नहीं, उसका सत्य अनुभव था कि गाँव इन मामलों में कितने झूठ होते हैं आज कोई अपना हित है तो उसकी वाह! वाह!! सब सोना! लेकिन कल थोड़ी-सी अनबन हो गई तो लाख लांछन! उसकी सब तरह की बुराई, उसकी समूची जड़ काट देने के लिए तत्पर और अगर उस में थोड़ी-सी आत्म-मर्यादा है; तब तो गाँव की वह आपसी अनबन-क्रोध-मनमुटाव तत्काल वैर-प्रतिहिंसा में परिणत हो जाता है। उस को उखाड़ने के लिए झूठे लाँछन, अफवाहें और उड़ती हुई कहानियाँ गढ़ने में कितनी देर! जहाँ चाहिए वहाँ हवा में सुन लीजिए—'अरे! उस ने तो रुपया लेकर फलाँ जगह लड़की की शादी की है। वह उस दिन लड़की के घर खा भी आया है। उस ने अपने माँ-बाप की क्रिया नहीं की और आज उनके मरे दो वर्ष हो गए। उस के चार बीघे खेत गिरवीं हैं। उसकी लड़की चौदह वर्ष की

हो गयी और वह अब तक अपने घर में बैठाए हुए है। उस के यहाँ तो आजकल एक ही समय खाना बनता है। वह तो चोर है, कल फलाँ के खेत में फसल काटते हुए पकड़ा गया। उसकी काकी विधवा है और न जाने कैसे पैर भारी हो गए। उसके घर तो चल आया है कि ऊपर से रामराम भीतर से कसाई का काम। कौन बातें करें उसके घर की; गाँव की नाक काट ली उस ने उस दिन'

इस तरह जमुना गाँव की आत्मा के अणु-अणु से परिचित थी। पुरैना गाँव ने उसे स्वयं अपना कितना बड़ा शिकार बनाया था; इसे वह कभी नहीं भूल पाती थी। वह जहाँ कहीं भी किसी बड़े-भरे पूरे गाँव को देखती थी; उसे ऐसा लगता था, जैसे यह कोई बहुत पुरानी बावली है; जिसे गाँव वालों ने स्वय फावड़ों से खोद-खोद कर बनाया है। बावली पानी से भरी है और उसके चारो ओर बड़ी ऊँची-ऊँची खन्दकं हैं; जिनसे न बावली का पानी बाहर जाता है न बाहर का पानी उसमें आता है और न जाने कब से बावली का पानी हरा होकर गंदा और घिनौना हो गया है और लोग उस में मेढकों की तरह टर्रा रहे हैं।

जमुना जग्गी पंडित को ले कर कुएँ से आगे बढ़ गयी और गाँव से बिल्कुल बाहर एक आम के पेड़ के पास चली गयी और वहां बैठी हुई पदारथ काका का रास्ता देखने लगी।

एक घंटा दिन शेष रह गया; तब पदारथ काका एक नौजवान को साथ लिए हुए सामने से, रास्ते पर आते हुए दिखाई पड़े। जमुना की दृष्टि दूर से ही उस नौजवान पर टिकी हुई थी। खूब ऊँचा कद है; छरहरा जवान, बड़ी गम्भीर चाल है। धोती गाँठ से बहुत नीचे नहीं गयी

है। कुर्ता लम्बा है और उसकी बाहें ऊपर चढ़ी हुई हैं, जैसे, वह कहीं खेत में काम कर रहा था। कंधे पर सफेद अंगोछा है और पाँव नंगे हैं।

पदारथ काका ज्यों-ज्यों आम के पेड़ के पास आते जा रहे थे; जमुना की अपलक दृष्टि में उस व्यक्ति का चित्र उतना ही साफ स्पष्ट होता जा रहा था। कोई बनावट नहीं, कोई शान नहीं, जैसे, ज़िन्दगी की परिस्थितियों और संघर्षों ने उसे असमय गम्भीर और सौम्य बना दिया हो।

जमुना ने सफेद चादर से अपने को ढक लिया था। वह बिछे हुए कम्बल पर बैठी थी और उस की दृष्टि पास पहुँचते हुए उस व्यक्ति पर थी।

रामानन्द ने निःसंकोच, आगे बढ़कर जमुना के पैर छूना चाहा, लेकिन जमुना ने उसे सम्हाल लिया और उसकी मातृवत आँखें स्नेह और श्रद्धा से एकाएक डबडबा आयीं। वह रामानन्द को देख कर गद्गद् हो गयी; उसे लगा, जैसे वह उसका किसी जन्म का बेटा हो और आज उसे एकाएक मिल गया हो।

जमुना को उस के चेहरे की गम्भीरता में एक अजीब-सा आकर्षण मिला। उस की बड़ी-बड़ी शान्त आँखों में प्यार-स्नेह देने की इतनी क्षमता भरी थी कि जमुना मन-ही-मन प्रसन्नता से पागल हो उठी।

जमुना चुप थी, पंडित और पदारथ आपस में बातें करने लगे थे। रामानन्द उनकी बातों का बहुत ही थोड़े-थोड़े शब्दों में उत्तर देता जा था। लेकिन जमुना मौन थी, क्योंकि उसका जी भर गया था।

सब लोग बातें कर रहे थे, और जमुना मानो रामानन्द के पार्श्व में बैठी हुई सुभागी को देख रही थी। यह रामानन्द यह सुभागी। यह मेरी बेटी, यह मेरा दामाद। यह सुभागी इस की दूल्हन, यह रामानन्द उस का दूल्हा। दूल्हन गोरी, दूल्हा गेहुआँ। सोलह वर्ष, चौबीस वर्ष; जमुना

मन-हीं-मन, गीत की एक पंक्ति गुनगुना उठी—'ऐसा वर 'खोज्यो बाबा अँचरा पसीजै नैना करे मनुहार, झुक-छिप हम राजा, देहियाँ निहारी, डेवढ़े हों सजना हमार।'

और जमुना स्वप्न देखती हुई सोचती जा रही थी; मेरी बेटी और मेरे दामाद की गृहस्थी, पति और धर्मपत्नी का स्वर्गिम संसार। फिर जमुना देखने लगी, रामानन्द के बायें, सटी हुई सुभागी बैठी है और सुभागी के अंक में दो बच्चे हैं - एक माँ का दूध पी रहा है एक उस के अंक में खेल रहा है। बच्चों का पिता रामानन्द उन्हें देख-देख कर मुस्कराता जा रहा है।

जमुना की आँखों से सहसा आँसू गिरने को हुए; लेकिन उस ने अपने को सम्हाल लिया और स्वप्न के भावलोक से वह नीचे उतर आयी।

उस ने रामानन्द से कहा, "बेटा ! पंडित और पदारथ काका ने तुम से सब बातें साफ कर दीं। तुम अब मेरे हो गए; यह भी मुझे लग गया। इसीलिए मैं चाहती हूँ कि तुम से और मेरे बेटी में कोई किसी तरह का पर्दा न रहे। जिसके चरणों में मैं अपनी बेटी दे रही हूँ, उस से क्या छिपाना ! पुरैना से चलकर यहाँ तक जो मैं आयी हूँ, और बेटा ! मैं ने तुम्हें भी यहाँ तक जो आने का कष्ट दिया है; उस का केवल एक कारण था ! उसे मैं तुझे साफ-साफ बता रही हूँ —सुभागी जैसे ही मेरे गर्भ में आयी, उस के कुछ ही दिन बाद उस के पिता को एक मामूली-सी बीमारी हुई और वे उसे छोड़ कर चले गए।"

जमुना रो पड़ी। अपने को सम्हालते-सम्हालते उस का आँचल आँसुओं से भीग गया। कुछ क्षणों के उपरान्त उस ने फिर कहना आरम्भ किया, "उन के स्वर्गवास होने पर मेरी यह बेटी पैदा हुई और उसे ले कर

उस के जीवन के बहाने विवश होकर मैं भी जीने लगी; नहीं तो यह निश्चित था कि अगर सुभागी मेरी गोद में न आयी होती; तो मैं पुरैना ऐसे गाँव में एक क्षण भी न रहती; अपने जीवन को समाप्त कर लेती। लेकिन मुझे जीना पड़ा और इसी जीने के लिए पुरैना गाँव ने मेरी इतनी यातनाएँ कीं, मुझे इतना सताया कि मैं कह नहीं सकती बेटा। सब से अधिक रोना तो इस पर है कि पुरैना वालों ने मुझे सताया, मुझसे दुश्मनी की, अच्छा किया, लेकिन मेरी बेटी ने उन लोगों का क्या बिगाड़ा था, उस से उन लोगों की क्या दुश्मनी थी !

जमुना फिर फफक कर रोने लगी और अपने को सम्हालती हुई कहने लगी, "जब मैं बेटी की शादी ढूढ़ने लगी; तब पुरैना गाँव वालों ने यह लाँछना उड़ा दी कि सुभागी अपने बाप की बेटी नहीं है, मेरे पति के स्वर्गवास के दो वर्ष बाद उसका जन्म हुआ है।"

जमुना रोती हुई कहने लगी, "बेटा किसी ब्राह्मण ने सच्चाई समझने का प्रयत्न नहीं किया और सब मेरे नाते को तोड़ते गए। किसी ने मेरी अग्नि परीक्षा नहीं ली और दूसरों की बात में आ कर लोग गंगा जैसी पवित्र मेरी बेटी को न जाने क्या समझ लिया !"

"लेकिन मैं तो और कुछ नहीं समझता," रामानन्द ने बीच ही में एकाएक कहा।

"मैं भी ब्राह्मण पट्टीदारों के गाँव में रहता हूँ; मुझे खूब मालूम है कि ये कितने रंग बदलते हैं। आप घबड़ाइए नहीं; मेरी ओर से बिल्कुल चिन्ता न कीजिए।"

"मुझे तुम पर पूरा विश्वास है बेटा," जमुना ने आँसू पोछते हुए कहा, "तभी मैं ने तुम्हारे सामने अपना सब कुछ कह दिया। और यह भी सुन लो बेटा; मैं ने अपनी बेटी को तपस्या और आँसुओं से पाला है। बहुत ही अच्छी लड़की है वह, बिल्कुल तुम्हारे ही योग्य... ।"

यह कहते-कहते जमुना ने बढ़ कर रामानन्द का पैर छू लिया, और दो रुपये उस पर रख दिये।

दिन डूबने में थोड़ी-सी देर थी। जमुना का मन भर गया था और उस के सामने रामानन्द संकल्प की भावभूमि पर पुत्रवत खड़ा था।

पेड़ों की परछाइयाँ लम्बी और घनी होती जा रही थीं; जमुना, पंडित, पदारथ काका के साथ रामनगर के रास्ते पर बढ़ रही थी और रामानन्द उन्हें विदा दे कर उसी आम के पेड़ के पास खड़ा था। उसे लग रहा था, उसके बाएँ कोई खड़ा है, और वह चुप है। रामनगर के पथ से जैसे, उस की माँ चली जा रही है और वहाँ उस की लक्ष्मी खड़ी है।

७

बैसाख-शुक्ल पक्ष के एक अत्यन्त शुभ लग्न में सुभागी का व्याह रचा। सिकन्दरपुर से पुरैना बारात आयी। लेकिन वह बारात केवल जमुना के ही लिए आयी। गाँव के ब्राह्मण पट्टीदारों ने इस में भाग न लिया, शेष लोगों ने अवश्य जमुना को यथासम्भव सहारा दिया। पट्टीदारों को अपने-अपने में अत्यन्त पीड़ा इस बात की थी कि कैसे एक कुलीन ब्राह्मण के घर, गाँव से विरुद्ध रहते हुए भी जमुना ने शादी तै कर ली, और शादी हो भी जा रही है। पट्टीदार पराजय की इस सहज ज्वाला से जल-भुन गए; लेकिन उन की एक भी न चली।

पट्टीदार खड़े दूर से तमाशा देखते रहे। जमुना अपनी आँखों में आँसू लिए, लेकिन कमर कसे हुए सारे कार्य का संचालन स्वयं कर रही थी। वह दौड़ कर रसोईघर में जाती, आँगन के मड़वे में दौड़ती, बाहर दरवाजे से लग कर बाहरी प्रबन्ध करती, चुपके से अपने एकाकी-पन और दिवंगत पति की सुधि कर के रो भी लेती और दौड़ी-दौड़ी

स्त्रियों को लेकर गाने भी लगतीं

काँपइ हाथी रे काँपइ घोड़वा काँपइ नगरा के लोग,
हथवा में कुस ले-ले काँपे ले बाबा कब दोनों उगरह होइ।
रहँसइ हाथी रे रहँसइ घोड़ा रहँसइ सकल बराति;
मँड़वे मुदित मन समधी रे विहसइ भले घर भइल विवाह।
गंगा में पइठि बाबा सुरुज गोड़े लागे मोरि बूते धिया जनि होय,
धिश्रवा जनम जब दीह हो विधाता जब घरे सम्पति होय।

गाँव खड़ा-खड़ा देखता रहा। जमुना के द्वार पर बारात की अगुआनी हुई; द्वार-पूजा हुई; दूल्हा मन्डप में गया, और मंगल गीतों से अकेली जमुना ने अपने सूने घर की सारी दीवारों को रंग दिया।

सुभागी सुहागन हुई और जमुना ने अपने सूने आँचल को आकाश की ओर फैला कर डबडबायी हुई आँखों से गा दिया—'जुग जीवो चन्दा, जुगुति राख्यो धीया मोर भयलीं सुहागन आज।'

बड़हार के दिन पुरैना के पट्टीदारों ने जमुना के घर भात न खाया; और वे लोग दूर खड़े देखते रहे। लेकिन बारात ने भात खाया। मड़वा हिलाया गया और जमुना ने अपना सर्वस्व सुभागी को बिदा करते-करते दे दिया—अपने सब गहने, अपनी सब पूँजी। उसने सुभागी को केवल अपनी उस नथुनी और बेसर को अवश्य नहीं दिया; जिसे पहन कर वह स्वयं सुहाग के डोले पर चढ़ी थी और भविष्य में विधवा हो गयी। इसीलिए वह उसे अशुभ मानती थी और उस ने उन को धरती में गाड़ रक्खा था।

फिर भी जमुना ने अपने हाथों से सुभागी को नख से शिख तक सजाकर, उसे बेटी से दूल्हन बनाकर रुदन और आँसुओं के बीच उस ने

7628

उसे अपना भेंट अकवार दिया। लेकिन जमुना के पाँव, दूल्हन सुहागन बेटी के साथ आँगन से आगे न बढ़े। वह आँगन से ही बेटी को बिदा दे कर, स्वयं एक कमरे में जा कर छिपी; ताकि डोले में बैठती हुई उस की सुहागन बेटी पर उसके वैधव्य की कहीं छाया न पड़ जाय।

पुरैना के ब्राह्मण खड़े देखते रहे। सिकन्दरपुर से पुरैना गाँव में बारात आयी और सुभागी का रोता हुआ शुभ-सोहाग का डोला बड़े पीर बाबा वाले बाग को पार करता हुआ, रेहार वाली डहर से दूर चला गया।

सिकन्दरपुर में जब सुभागी का डोला उतरा; उस समय एक घंटा रात बीत गयी थी। लेकिन गाँव में अपूर्व ढंग से चहल-पहल थी। रामानन्द का घर गाँव की दूल्हनों और अन्य पर्दा नशीन औरतों से भरा था। दरवाजे पर, बरामदे में गाँव के और नौजवान बैठे थे, बाहर दरवाजे की सहन में, गाँव के छोटे-छोटे लड़के प्रसन्नता से खेल रहे थे और कुछ सामने लड़के इधर-उधर मिट्टी, धूल और घास में उन बिखरे हुए पैसों को ढूढ़ रहे थे; जिन्हें रामानन्द की दादी और मामी ने दूल्हन के डोले पर फूलों के साथ बरसाया था।

उसी रात को गाँव भर में—घर-घर चर्चा होने लगी कि रामानन्द कितना भाग्यशाली है। इतनी सुन्दर, सुशील और गुणी दुल्हन उसे मिली है कि उसकी बराबरी गाँव भर में कोई नहीं कर सकता। कितना सामान वह अपने साथ लायी है, बिदाई के इतने बड़े-बड़े दो बक्से; बर्तन, सीधा-पिसान, मौनी-दौरी-डलवे-डलिया, पाँच भार मिठाई

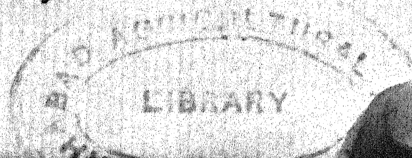
और एक दुधार गाय। रामानन्द राजा हो गया और घर में उस ने साक्षात लक्ष्मी पा ली। फिर भी दूल्हन में, अपने पर तिल भर का गुमान नहीं। उस ने एक-एक औरत का पाँव छुआ और उस ने यथाउचित सब को पाँव छुआयी भी दी।

फूल जैसी कोमल, चन्दा जैसी सुन्दर, वह पक्के दो घंटे तक खुद ढोलक बजाती हुई अनेक तरह के गीत सुनाती रही; न जाने कहाँ से उसे इतने गीत याद थे—ग़ज़ब का गला भी पाया है। खूब दूल्हन मिली रामानन्द को!

मुख्यत: ये बाते गाँव की कुमारी लड़कियाँ और माताएँ कर रही थीं। लेकिन गाँव की दूल्हने और बूढ़ी औरतें अपने-अपने ढंग से दो और तरह की बातें कर रही थीं। दूल्हने अपेक्षाकृत चुप थीं, केवल वे इतना ही अपनी-अपनी ननदों और पतियों से कह कर चुप हो जाती थीं 'कि दूल्हन अच्छी ही है; डोले से उतरने पर सब का वाह-वाह होता है···लेकिन...।' इसके बाद दूल्हने अपने-अपने विषय में बातें करने लगती थीं, अपनी बिदाई और अपने नैहर की बात। बूढ़ी औरतों में एक अजीब ही तरह की फुसफुसाहट हो रही थी—'कलमुही माँ की बेटी है न! जभी बड़े गुण और रूप हैं!...नाम बड़ा दरसन थोर। कुल-परिवार बाप-दादे की नाक कटाई रामानन्द ने। इसी मनसा पाप से उस की लक्ष्मी जैसी पहली पत्नी मरी है; अब आयी है इसकी पारी, देखो लोगे बारी-बारी।'

विवाह के पन्द्रह दिनों के भीतर रामानन्द के घर से सब पहुने-हित-सम्बन्धी अपने-अपने घर को बिदा हो गए। सुभागी को अकेलापन न लगे, रामानन्द ने आग्रह करके बुआ और मामी को अपने घर रोक लिया।

दादी की प्रबल इच्छा थी कि दूल्हन को कम-से-कम छः महीने तक



चौके में चूल्हे के पास न बैठने दिया जाय, लेकिन सुभागी अपने आग्रह से दादी को वश में कर के दूसरे ही महीने चौके में जा घुसी और गृहस्थी को उस ने अपने कंधों पर उठा लिया।

प्रात:काल बड़े भोर में ही सुभागी सो कर उठ जाती और सारे घर का झाड़ू वह तब तक दे चुकी होती, जब तक दादी और बुआ वगैरह उठती थीं। स्नान करने के बाद सुभागी नित्य-प्रति सब के लिए कुछ न कुछ नाश्ता अवश्य तैयार करती। दोपहर में सब को खाना खिला कर जैसे, ही वह छुट्टी पाती, गाँव की विशेषकर वे कुमारी लड़कियाँ; जो व्याहने योग्य हो गयी थीं; सुभागी को घेर कर बैठ जाती थीं। पूरी दोपहरी वह उन्हीं लड़कियों में बिता देती। किसी को भजन सिखाती, किसी को दादरा-गजल सहाना, बारहमासा, कजली और सोहर सिखाती, कागज़ पर लिखवाती और किसी-किसी को वह सीना-पिरोना, काढ़ना और बिनना भी बताती। इसके उपरान्त वह फिर घर-गृहस्थी के कार्य में लय हो जाती और रात के दस बजे तक कहीं सर उठा पाती।

सोने के पहले जब वह दादी के सर पर तेल लगाने जाती, उस समय दादी की आँखें स्नेह की आँसुओं से भीगी रहतीं। वह शिकायत करती 'दूल्हन बेटी! तू क्यों इतना काम करती है। न मुझे कुछ करने देती, न अपनी बुआ और मामी को, सब के हाथों से छीन-छीन कर काम करती है; यह ठीक नहीं। मुझे बहुत दुख होता है, लेकिन तू मेरी मानती ही नहीं। अभी तो तू डोले से उतरी है, अभी सब तरह से तुझे सुख-विलास मिलना चाहिए। इसीलिए तो मैं ने बुआ और मामी को रोक लिया है; लेकिन एक तू है कि...।" सुभागी दादी को कुछ उत्तर न देती, वह बच्चों की तरह मुस्कराती और दादी के चरणों को अपने आँचल से छू कर बुआ-मामी के पास चली

जाती। कुछ-न-कुछ क्षणों तक वह उनके पैरों को दबाती; और घर में जब सब सो जाते तब वह अपने कमरे में जाती और इस तरह गृहस्थी के एक दिन का चक्र पूरा हो जाता।

यद्यपि वह चक्र सुभागी ऐसी दुलारी-कोमल लड़की को थका देने वाला था; क्योंकि उस चक्र में जितना भार था, उससे भी अधिक उस में एक ऐसी गति थी; जिसके साथ सुभागी को बहुत तेज़ी से दौड़ना पड़ता था; लेकिन वह कभी थकती न थी, वरन् अधिकार-सुख और पति के अनन्य प्रेम से वह बहुत ही प्रेरित रहती थी।

सुभागी रामानन्द को मनुष्य के रूप में देवता की भाँति देखती थी। उसे यह बात कभी नहीं भूलती थी कि पुरैना-गाँव वालों ने किस तरह उस के विवाह की जड़ में मठा डाल दिया था। वह कलमुहीं की बेटी घोषित कर दी गयी थी और उस का विवाह किसी कुलीन ब्राह्मण के घर होना बिल्कुल असंभव-सा हो गया था। लेकिन माँ-बेटी की लाज रक्खी तो इसी देवता ने।

कितना चौड़ा सीना है मेरे बालम का, कितनी बड़ी-बड़ी बाहें हैं, मेरे देवता की, कितनी गहराई है मेरे साजन की आँखों में—सुभागी की अनुभूतियाँ हरदम इन्हीं भावों में पगी रहती थीं।

रामानन्द को पीढ़े पर बैठा कर जब वह उसे भोजन कराती थी, तब वह पंखा झलती हुई थोड़े से घूँघट की ओट से उसे अपलक देखती थी। जब वह घर से कहीं बाहर जाता अथवा दरवाजे से कहीं खेत-सिवान तक भी जाने लगता, तो सुभागी बाहर दरवाजे पर आधी खुली हुई किवाड़ के पीछे छिप कर खड़ी हो जाती और जाते हुए रामानन्द को तब तक देखती रहती जब तक वह आँखों से ओझल न हो जाता।

और जब वह सुभागी की आँखों से बिल्कुल ओझल हो जाता; पंजे पर खड़ी-खड़ी देखने पर भी जब वह नहीं दिखाई पड़ता, तब सुभागी कुछ गुनगुनाती हुई—भीतर आँगन में चली जाती।

और प्रत्येक सन्ध्या को, जब सुभागी अपने आँगन में खड़ी हो कर नीले आकाश की ओर देखती, और पाती कि चिड़ियाँ अब अपने-अपने बसेरे को जा रही हैं; तब उसे नित्य उसी समय अपनी माँ जमुना की याद आती थी।

सुभागी के लिए माँ की-स्मृति में कितनी करुणा थी; कितनी पराजय और थकान थी; इसे सोचते ही उसकी आँखें नित्य संध्या को बरस पड़ती थीं।

वह फिर आँगन से पिछवाड़े, खिड़की की ओर चली जाती और खिड़की के चौखटे पर खड़ी हो कर वह करुणापूर्ण आँखों से दूर-सूने आकाश को देखने लगती—वह सूना आकाश जो सिकन्दरपुर से फैलता हुआ चुपचाप पुरैना तक चला गया था। वह क्षण भर में पुरैना पहुँच जाती और देखती माँ बीमार खाट पर पड़ी है। दरवाजा सूना है; दरवाजे पर अब कोई जानवर नहीं है। सब खेती पदारथ काका की ज़िम्मेदारी पर है। क्योंकि माँ के पास न अब किसी चीज़ का साहस है न उत्साह। उस की कमर झुक गयी है; आँखों में अब वह रोशनी न रही।

"क्या हो गया माँ, तुझे इतनी जल्दी ?" सुभागी शून्य में ही यह पूछ बैठती। और वह उत्तर में सुनने भी लगती कि माँ मानो कराहती हुई धीरे-धीरे कह रही है—'बेटी ! मैं तो मर तभी गयी थी, जब तेरे बाबू जी का स्वर्गवास हो गया; लेकिन मैं केवल तेरे लिए; जी रही थी, क्योंकि तुझे जिलाना था। अब तू जी गयी; सुहागन हो कर अपने घर चली गयी। अब मेरे जीने का धर्म समाप्त हो गया।... ..फिर पुरैना ऐसे गाँव में एक मुर्दा कहाँ तक जीए बेटी ?'

सुभागी, माँ से जिन बातों को अपने शून्य में सुनती थी अथवा अनुभूति के आधार पर कल्पना करती थी; उनमें से बहुत बातें सत्य थीं। आते-जाते आदमियों से पता चलता था कि अब माँ की दशा दिनों-दिन बिगड़ती जा रही है। उसे उठने-बैठने में कष्ट होता है। उस की दायीं आँख से बहुत कम दिखायी पड़ता है।

भादों उतरते-उतरते बुआ और भाभी अपने-अपने घर चली गयीं और सुभागी अपनी घर-गृहस्थी में अकेली बुढ़िया दादी के साथ रह गयी।

माँ की याद अब सुभागी को और भी आने लगी। घर के कारोबार से जैसे, ही उसे क्षण भर की छुट्टी मिलती, माँ की याद उसे पागल बना देती थी। वह खिड़की पर जा कर खड़ी होती और उस की आँखों से आँसू गिरने लगते।

जमुना कभी भी अपनी वास्तविक मनोदशा या स्थिति से सुभागी को परिचित न होने देती थी। वह कभी न चाहती थी कि उसकी करुणा और विपत्तियाँ बेटी की सुख-शान्ति पर अपनी काली छाया डाले। लेकिन उसकी प्रतिक्रिया से सुभागी और भी अशान्त और चिन्तित रहती।

सुभागी ने एक रात, यह स्वप्न में देखा कि माँ बहुत बीमार है। उस की नींद तुरन्त खुल गयी और वह तत्काल रोने लगी। उस ने रामानन्द से आग्रह किया कि वह सुबह ही पुरैना जाय और माँ को यहाँ लिवा लाए।

रामानन्द जब पुरैना पहुँचा, उस ने देखा, वास्तव में जमुना बीमार पड़ी थी और वह पूर्णतः निःसहाय थी। रामानन्द को देख कर उसे पूर्ण

शान्ति मिली। लेकिन जब उस ने जमुना को सिकन्दरपुर, सुभागी के पास ले चलने की बात चलायी, उस समय वह रो पड़ी। उस ने अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए रामानन्द से बताया, 'वह जल्दी अच्छी हो जायगी, बेटी से कहना कि वह मेरी चिन्ता न करे, मैं अभी मरूँगी नहीं। और बेटा! मैं बेटी के गाँव कैसे जा सकती हूँ! मुझे तो उसका सिवान नहीं काँड़ना चाहिए, उस के यहाँ जाने की बात तो दूर रही। मैं ब्राह्मणी हूँ और सुभागी के बाबू जी इस क्षेत्र के बहुत बड़े पंडित थे, मुझे उन की मर्यादा का पालन करना चाहिए न!"

रामानन्द ने दूसरा प्रस्ताव यह किया कि वह सुभागी को ही पुरैना भेज दे और वह तब तक माँ के पास रहे, जब तक उसकी तबीयत बिल्कुल ठीक न हो जाए। जमुना ने दामाद का यह भी प्रस्ताव न स्वीकार किया। वह बार-बार इसी सत्य को दुहराती रही कि 'मेरी बेटी जहाँ है, वहीं सुख और शान्ति से रहे। मैं कभी नहीं चाहती कि मेरी सुभागी मेरे इस दुश्मन गाँव पुरैना में आए। मैं तो यहाँ तक भी नहीं चाहती कि मेरे मरने के बाद मेरी लाश इस गाँव के सिवान या धरती में जलायी या गाड़ी जाए।'

जिस सुबह को रामानन्द पुरैना से बिदा होने वाला था, उस सुबह उस ने देखा, जमुना का बुख़ार बहुत तेज़ हो गया था। बलग़म से उसका सारा सीना जकड़ गया था। रामानन्द ने घर लौटने का विचार छोड़ दिया और वह जमुना की खाट सम्हाले वहीं बैठ गया।

बाँसी से कई डाक्टर आए। सुबह से शाम तक जमुना को न जाने कितने इन्जेक्सन दिये गये, लेकिन उसकी दशा बिगड़ती गयी।

रात के पिछले पहर, जमुना एकाएक ठीक-सी हो गयी। उस का बुखार सहसा उतर गया। रामानन्द ने उस का पूरा शरीर छुआ; पूरा शरीर ठन्डा हो रहा था। जमुना आँखें खोले रामानन्द को देख रही

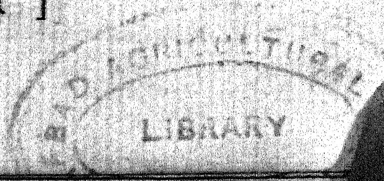
थी। उसके पीले चेहरे पर रोशनी की एक मद्धम-सी झलक उभर रही थी। गले और सीने का बलग़म बैठ गया था। वह बहुत ही अस्पष्ट स्वर में अब राम-राम शब्द का उच्चारण भी करने लगी थी।

रामानन्द को शान्ति थी। वह कमरे से निकल कर रात का अन्दाज़ा लगाने के लिए आँगन में चला आया। आकाश में उस ने देखा, सितारे कम हो चले थे। उत्तर के सात-तारे पश्चिम दिशा में बढ़ गए थे। बृहस्पति तारे का वर्ण पीला हो चुका था और पूरब का शुक्र उदित हो गया था।

रामानन्द थोड़ी देर तक आँगन में घूमता रहा, फिर वह दबे पाँव जमुना के कमरे में चला आया। जमुना शान्त-निश्चल पड़ी थी। उस ने उस के मुख पर से चादर हटा कर देखा और वह पत्थर-सा रह गया। जमुना वहाँ न थी। वह इतने ही क्षणों में साँसें तोड़ चुकी थी और उस की मुर्दा आँखें यद्यपि खुली रह गयी लेकिन वे हमेशा के लिए शान्त हो चुकी थीं। ओंठ दायीं ओर टेढ़े होकर पथरा गए थे।

रामानन्द रोया नहीं, वह जमुना के मुँह को भली -भाँति ढक कर, सरहाने बैठा, अनवरत गति से राम-राम कहने लगा और वह अंधकार में देखने लगा, सुभागी चीखती और करुण विलाप करती हुई माँ के शव से लिपट गयी है।

जमुना के शव को सुबह टिकठी पर रख कर, रामानन्द पदारथ काका के सहारे पुरैना गाँव से बाँसी लाया। बहुत ऊँचे किराए पर उस ने एक टैक्सी की, और सड़क से सरजू नदी की ओर चल पड़ा। अयोध्या-घाट पर पहुँच कर उस ने चिता का सारा प्रबंध किया और तीसरा पहर होते-होते उस ने सरजू के तट पर जमुना की दाह-क्रिया कर दी और कफ़न का टुकड़ा लिए हुए वह वापस चल पड़ा।



सिकन्दरपुर पहुँच कर रामानन्द एक बार अवश्य रोया, लेकिन जब वह अपने घर के दरवाजे पर आया; उसके आँसू सूख गए।

अन्त्योष्टि क्रिया के समस्त व्यापारों से रामानन्द दूसरे महीने निवृत हो सका। उस दिन वह पूरे डेढ़ महीने के बाद घर में गया। आँगन बहुत सूना था। वह सीधे अपने कमरे में गया; सुभागी वहाँ भी न थी। वह खिड़की की ओर गया। उस ने देखा, सुभागी दरवाजे के सहारे खड़ी थी।

"ओ ! मेरी मालकिन !!" रामानन्द ने प्यार से पुकारा और तेजी से आगे बढ़कर वह सुभागी के सामने खड़ा हो गया।

सुभागी फौरन वहाँ से मुड़ी। अपने कमरे में आयी और रामानन्द की गोद में वह अपना सर छिपा कर इस तरह फूट-फूट कर रोने लगी; जैसे, रामानन्द ही जमुना हो और सुभागी चार वर्ष की मुग्गी हो। वह कुछ कह नहीं रही थी; बस बच्चों की तरह रोती जा रही थी।

रामानन्द उसे समझा रहा था —"अब क्या फायदा होगा रोने से ! उस का मर जाना ही अच्छा हुआ। वह बहुत प्रसन्न थी, मरते समय। उसकी सारी मनोकामना पूरी हो गयी। उसके लिए मत रोओ सुभागी ! नहीं तो स्वर्ग में उस की आत्मा को कष्ट होगा !"

"सच, कष्ट होगा ?" सुभागी एकाएक चुप-सी हो गयी।

"हाँ; जब तुम रोओगी; तब उसकी आत्मा भी अशान्त होकर रोयेगी," रामानन्द ने बताया, "और जब तुम हँसोगी, प्रसन्न रहोगी; तब उस की आत्मा को स्वर्ग में शान्त मिलेगी !"

"सच !" सुभागी के ओठों पर मुस्कराहट दौड़ गयी, "मेरी माँ को स्वर्ग मिला होगा ?"

" हाँ, जरूर मिला होगा," रामानन्द ने भोली सुभागी को समझाते हुए कहा, "रामायण में लिखा हुआ है कि मरते समय जिस के मुँह से एक

बार भी राम शब्द का उच्चारण हो जाय; उसे बैकुन्ड मिलता है। और जमुना तो मरते समय राम-राम की ही रट लगाए हुए थी।"

"सच, राम क़सम ?" सुभागी प्रसन्नता से हँसने लगी और साथ ही साथ उसकी आँखों से आँसू झरने लगे।

"तुम कितना आँसू बहाती हो सुभागी," रामानन्द अपने अँगोछे से सुभागी के आँसू पोछने लगा, "तुम रोती हो तब भी तुम्हारी आँखों से आँसू बहते हैं, और जब तुम हँसती हो तब भी; अजीब हालत है तुम्हारी !"

आँगन से उसी समय दादी की पुकार आयी और वे दोनों कमरे से निकल कर आँगन में चले आए। दिन ढल चुका था। आधे आँगन में धूप थी और आधे आँगन में खपरैल की छाया की नमी उतर आयी थी। दादी उसी छाया में खटोले पर बैठी हुई चावल में से उरद अलग कर रही थी।

कमरे से बाहर निकल कर, सुभागी आँगन के पावे के सहारे खड़ी थी। रामानन्द दादी के बिल्कुल पास बैठा था।

"क्या है रे दादी ?" रामानन्द ने पूछा।

"है क्या ?" दादी ने अधिकार पूर्ण शब्दों में कहा, "बैसाख से आज कार्तिक—सात छः महीने बीत गए, हमारी दूल्हन बेटी घर से बाहर नहीं निकली ! बेचारी की तबीयत न उकताती होगी; अभी बच्ची ही तो है !"

"तो बता मैं फिर क्या करूँ ?" रामामन्द ने दादी से पूछा, "मैं इसे भी खेत-बारी में ले जाऊँ दादी !"

रामानन्द सुभागी को देख कर मुस्करा पड़ा और वह शरमा गयी।

दादी ने बिगड़ते हुए कहा, "नहीं रे ऐसी बात! खबरदार जो मेरी दूल्हन बेटी को तूने घर से निकाल कर उसे खेती-बारी का मुँह देखने दिया! यह मेरे घर की लक्ष्मी है! समझा न?"

"समझा दादी!"

"मैं यह कह रही थी," दादी ने सामने की परात को बायीं ओर टालते हुए कहा, "कि परसों सागरा का मेला है। मेरी दूल्हन बेटी को यह मेला जरूर दिखा लाओ। घर पर मैं रहूँगी—सब प्रबंध देख लूँगी। तुम लोग सागरा के मेले में जरूर जाओ। मौनी बाबा के सगरे में स्नान करना। दूल्हन को सीताकुंड दिखाना...!"

"कैसा सीताकुंड दादी?" सुभागी ने पास आते हुए पूछा और वह स्वयं बैठ कर परात के चावल से उरद अलग करने लगी।

"तू सीताकुंड नहीं जानती?" दादी ने आश्चर्य कर, स्वयं उत्तर दिया, 'लवकुश कांड में बेटी! जब राम ने अपने पुत्र लव-कुश को पहचाना फिर वे सीता जी के पास गए और उन्हें अयोध्या चलने की उन्होंने प्रार्थना की। लेकिन बेटी! तुझे मालूम ही होगा, सीता धरती की पुत्री थीं। अब धरती नहीं चाहती थी कि उसकी बेटी इस संसार में ठोकर खाए। फिर क्या हुआ कि धरती माता का सीना फट गया और उस में सीता समा गयीं। और वही जगह अब कुंड हो गया; जिसे 'सीताकुंड' कहते हैं।"

"मैं ने तो सुना है दादी, कि सागरा के पंडों ने इस कहानी के आधार पर उसे झूठ-मूठ में 'सीताकुँड' का नाम दे दिया है।" रामानन्द ने दादी की बात काटते हुए कहा, "असली सीताकुंड तो दादी मेरे विचार से कहीं गंगा के किनारे उस घने बन में होगा जहाँ मुनि का आश्रम रहा होगा और जहाँ बनवासी सीता रहीं होंगी!"

"तू क्या बकता है रे!" दादी ने अपने विश्वास पर बल देते हुए

कहा, "मैं झूठ कहती हूँ ? सीता वहीं सागरा में धँसी थीं, और वही सीताकुंड है।"

"अच्छा दादी, मैं भी मान गया।" रामानन्द ने स्वीकार किया, "वही असली सीताकुंड है।"

"हाँ, दूल्हन को सीताकुंड दिखाना," दादी ने अपनी पिछली बात का सिलसिला आगे बढ़ाते हुए कहा, "दूल्हन बेटी को फिर झड़ुल्ले बाबा की कुटी पर ले जाना। कुटी की परिक्रमा कराना और बाबा से साफ़-साफ़ कह देना, सरमाना नहीं, कि बाबा ! सात महीने हो गए, मेरी दूल्हन की गोद खाली है...।"

सुभागी शरमाकर वहाँ से भाग निकली। रामानन्द हँसने लगा लेकिन दादी अपनी बात पूरी करने में लगी थी, "बाबा से भभूत ले लेना और मेला घूम-देख कर शाम होते-होते घर लौट आना, हाँ...।"

सिकन्दरपुर के क्षेत्र में सागरा का मेला सब से बड़ा मेला था। तीस-तीस कोस के यात्री-लोग उसे देखने के लिए, उसमें भाग लेने के लिए आते थे। रामनगर, हरैया, टाँडा, लालगंज, बस्ती, फैजाबाद और गोंडा तक की दूकाने उसमें आती थीं। खाने-पीने खेल-तमाशे और गहना-गुरिया-कपड़े-लत्ते की दुकानों के अतिरिक्त उस मेले में एक ओर जानवर बिकने के लिए आते थे—बैल-गाय और ऊँट। दूसरी ओर उसमें लकड़ी के बहुत कीमती और उम्दा सामान बिकने आते थे जैसे, बैलगाड़ी के चक्के, हरसे, जुए। खेती के सामान में, जैसे, हल-हेंगा, जुआठा और हरस वगैरह और घर बनाने के सामान में, जैसे, बड़ी-बड़ी सागोन की बल्लियाँ, शीशम के पटरे, माहू-आम-नीम की तड़कें, शाखू की उम्दा-उम्दा शहतीरें और दो सै रुपये से लेकर एक हज़ार

रुपये तक के शीशम शाखू-सागौन की शाल के दरवाजे।

मेले में कई अखाड़े होते थे; जहाँ वर्षों की बदी हुई पहलवानों की कुश्तियाँ होती थीं। रोंगटे खड़े कर देने वाली भेड़ों की लड़ाइयाँ होती थीं!

इस तरह सागरा का मेला एक सप्ताह तक चलता था और उसके प्रबन्ध में जिले के यस० पी० कोतवाल और कई थाने वहाँ आ कर अपने डेरे लगाते थे।

सिकन्दरपुर की कई बैलगाड़ियाँ सागरा के मेले आयी थीं, लेकिन सुभागी की बैलगाड़ी रात के चार घंटे तड़के चल कर पौ फटते-फटते सागरा पहुँच गयी।

सुभागी ने अब तक अपने जीवन में इतना बड़ा मेला नहीं देखा था। वह रामानन्द के साथ सबसे पहले मौनी बाबा के सगरे पर गयी। गाँठ जोर कर उन दोनों ने सगरे में स्नान किया। बीस आने पैसे और एक सीधा छू कर उन्होंने मौनी बाबा के मन्दिर पर चढ़ावा। गाँठ जोड़ कर उन दोनों ने सात वार मन्दिर की परिक्रमा की। अंतिम परिक्रमा समाप्त करके सुभागी ने मन्दिर के देहरी पर अपना सर टेकते हुए मन-ही-मन में प्रार्थना की—"हे ईश्वर! जब तक सूरज और चाँद रहें तब तक मेरा सुहाग अमर रहे।"

सुभागी की आँखों में फिर आँसू उमड़ पड़े। जिसे देख कर रामानन्द मुस्करा पड़ा, "यहाँ आँसू की क्या बात आ गयी?" इस के उत्तर में सुभागी हँस पड़ी और वह रामानन्द के साथ मन्दिर की सीढ़ियों से उतरती हुई मेले में चली आयी।

मेले को पार कर के सीताकुंड पहुँचने का रास्ता था। सुभागी रेशमी साड़ी के ऊपर पीले रंग की एक मोटी चादर ओढ़े थी। उसी चादर को ओढ़ कर, उसी के घूँघट में वह डोले से उतरी थी। मेले में चलते

हुए सुभागी से वह चादर सम्भालते न बनता था। बार-बार उस के सर से चादर कंधे पर आ जाती थी और लोग उसे घूर-घूर कर देखने लगते थे। फिर उसे बड़ी झुँझलाहट होती थी और वह तुरन्त बढ़ कर रामानन्द के हाथ पकड़ लेती थी।

पूरे एक घंटे में सुभागी मेले को किसी तरह पार करके 'सीताकुंड' आयी। यहाँ भी बड़ी भीड़ थी; लेकिन भीड़ मुख्यतः औरतों की ही थी, अतएव उसे यहाँ बड़ी शान्ति मिली।

सीताकुंड पक्के ईंटों का बना हुआ एक गहरे से कुंड के रूप में था। उस में पानी कम, कीचड़ बहुत था। ऊपर से कुंड में उतरने के लिए केवल एक ओर से चौड़ी सीढ़ी थी। मेले के प्रबन्धकों ने सीढ़ी के बीचो-बीच ऊपर से नीचे तक दो मोटी-मोटी रस्सियाँ बाँध रक्खी थीं। एक ओर से औरतें नीचे उतरती थीं और दूसरी ओर से वे ऊपर वापस लौटती थीं।

इसमें मुख्यतः औरतें दर्शन करने के लिए और कुंड की धरती छूने के लिए जाती थीं और पुरुष केवल वे जा सकते थे जो अपनी पत्नी के साथ हों।

रामानन्द सुभागी को दाएँ हाथ से सम्हाले, ऊपर से कुंड में उतरने लगा। उस उतराई में सुभागी का चादर उसे और कष्ट देने लगा। रामानन्द ने उस की चादर उतार कर अपने कंधे पर रख ली और वे दोनों कुंड में उतर गए। दोनों ने कुंड की धरती को हाथ से छूकर उसे अपने माथे पर लगाया सुभागी ने अपने मन-ही-मन कहा, 'हे सीता जी! मेरा पातिव्रत भी इसी तरह अमर रहे। वे सदा जीवित रहें और मैं उन के सामने उन के देखते-देखते इसी तरह धरती में खो जाऊँ।'

रामानन्द ने कौतूहल-वश सुभागी की आँखों में देखा। इस बार उसे

उस की आँखों में आँसू न मिला; बल्कि एक ऐसा प्रकाश मिला; जैसे अग्नि का प्रकाश होता हो।

सीताकुंड से ऊपर आ कर सुभागी ने फिर अपनी चादर ओढ़ ली और उस से अपने मुख पर हल्का-सा घूँघट बना लिया; जिस से कोई उस की आँखों को न देख सके। सुभागी को इस का बहुत ख्याल था।

सीताकुंड के दर्शन के बाद रामानन्द ने हँसते हुए सुभागी के सामने झडुल्ले बाबा की कुटी के दर्शन का प्रस्ताव रक्खा। सुभागी इस प्रस्ताव पर बच्चों की तरह शरमाती रही और उस के पैर आगे बढ़ने से और भी लज्जा और संकोच से सहम रहे थे। वह आगे बिल्कुल न बढ़ती थी, बस हँसती थी, मुस्कराती थी और शरमा जाती थी। यहाँ तक कि उस का पूरा मुँह लज्जा के भार से गुलाबी हो गया। वह हाँ-नहीं कुछ करती ही न थी।

रामानन्द भी संकोच में पड़ कर उधर न जा सका और वह सुभागी के साथ मेले की ओर बढ़ गया।

मेले में सुभागी रामानन्द के साथ पूरे चार घंटों तक घूमती रही। भीड़ में जहाँ कहीं भी सिकन्दरपुर का कोई पुरुष रामानन्द के सामने से गुजरने लगता था या उस के सामने आ जाता, वह तत्काल सुभागी को अपने पीछे छिपा लेता। लेकिन जहाँ कहीं सिकन्दरपुर की कोई लड़की या औरत उन से मिलती, रामानन्द सुभागी को पूरी छूट दे देता कि वह उन से मिले और मेले का आनन्द ले।

सुभागी को मेले भर में दो चीजें बहुत पसन्द आती थीं—मिट्टी के खिलौने और रंग-बिरंगी माले, फूलों और मोतियों से गुँथे हुए सर के गुहने और सुहाग की पक्की टिकुलियाँ। इन चीजों को सुभागी ने इतना खरीदा था कि उस का आँचल भर गया था।

चार घंटे दिन शेष रह गया था; उस समय रामानन्द की बैलगाड़ी

सागरा के मेले से घर के लिए रवाना होने लगी। इस बार सुभागी ने सिकन्दरपुर की उन चार औरतों को भी अपने साथ बैलगाड़ी पर बिठा लिया, जो मेले में गाँव से पैदल चलकर आई थीं, और पैदल जा रही थीं। वे चार औरते थीं, विद्या की माँ और विद्या तथा केशर की माँ और केशर।

विद्या-केशर सुभागी को 'सखी भाभी' कहती थीं और सुभागी उन की माँ को दिवान जी कहती थी।

बैलगाड़ी पीछे की ओर पर्दे से ढकी थी और पर्दे के बाहर बिल्कुल आगे, खेलावन रामानन्द का हलवाहा, बैठा हुआ गाड़ी हाँक रहा था और उस के पीछे पर्दे से सट कर रामानन्द बैठा था। पर्दे में औरतें बैठी थीं।

खेलावन रामानन्द से मेले की घटनाएँ बता रहा था। सूरजपुर और तेनुवाँ के ठाकुरों में बड़ी तेज लाठी चल गयी थी। तेनुवाँ के ठाकुर महीपति सिंह ने सूरजपुर की एक चमारिन को आज दो वर्ष हुए अपने घर बैठा लिया था और इस मेले में वे उसे ले कर यहाँ आए थे। सूरज-पुर वालों ने उन्हें देख लिया। महीपति सिंह अपनी चमारिन के लिए एक पटहार की दूकान पर गुहना खरीद रहे थे और सुरिया उस के पास खड़ी-खड़ी पान का बीड़ा चबा रही थी। इतने में सूरजपुर वालों ने सुरिया चमारिन को पकड़ लिया। सुरिया चिल्लायी और उधर तेनुवाँ के ठाकुरों को भी पता चला और दोनों गाँवों में जम कर लाठी चली। कितने घायल हुए लेकिन तेनुवाँ वालों ने सुरिया को अपने हाथ से न जाने दिया।

खेलावन यह भी बता रहा था कितने अखाड़ों पर कौन-कौन से पहलवान पटके गए और उन पर कितनी जगह लाठियाँ चलीं। मेड़ों की लड़ाई में कितने मेंड़ मरे कितनों की सींगें टूटीं; खेलावन के पास सुन-सुनाकर इन सब का व्यौरा था।

दुल्लेपुर का एक कुरमी पाँस सौ रुपये लेकर अपनी बड़ी लड़की की शादी दौहट के चौधरी के यहाँ की थी। गौने के बाद दुल्लेपुर वाला उस को अपने घर लिवा लाया और ढाई वर्ष हो गए उस ने अपनी बेटी को चौधरी के घर बिदा ही नहीं की। इस मेले में दौहट के चौधरी ने लड़की को जबरदस्ती अपनी गाड़ी पर बिठा लिया और दुल्लेपुर वाला अपना सर पीटता ही रह गया।

खेलावन गाड़ी हाँकता हुआ रामानन्द को मेले की खास-खास घटनाओं का ब्योरा दे रहा था।

और गाड़ी में पर्दे के भीतर सुभागी, औरतों के साथ गा रही थी।

बैलगाड़ी सागरा के मेले से सिकन्दरपुर के रास्ते पर चली जा रही थी। दिन डूबने में केवल एक घंटा दिन शेष था।

रामानन्द दो विभिन्न दुनियाँ के बीच में बैठा चल रहा था। उस के सामने खेलावन बैठा था। वह यथार्थ दुनियाँ की तस्वीरें रख रहा था। गाँव की नंगी स्थितियों की वह चर्चा करता जा रहा था। और रामानन्द के पीछे उस की दुल्हन सुभागी की सपनों भरी दुनियाँ थी, जहाँ वह अपने गीतों के संगीत भरे पंख पर उसे बिठा कर एक ऐसी अनोखी दुनियाँ में ले जा रही थी; जहाँ गीत है, शान्ति है, स्नेह है और जीवन में कर्त्तव्य-रत होने की अद्भुत प्रेरणा है।

संध्या होते-होते रामानन्द की बैलगाड़ी सिकन्दरपुर पहुँची। संध्या से लेकर दो घंटे रात तक, गाँव के प्राय: सब लोग सागरा के मेले से लौट आए और उस समय से एक अजीब-सी खबर गाँव में धुएँ की तरह धीरे-धीरे फैलने लगी।

बैंजू सिंह के बड़े लड़के किरपाल ने मेले में भगवन्ती को दो रुपया नगद दिया था और उस ने भगवन्ती को भर-बाँह की चूड़ियाँ भी पहनायी थीं। तभी वह अपने पति रामलाल को घर पर ही छोड़ कर अकेले सागरा के मेले में गयी थी। लोगों ने देखा था कि वह मेले भर में किरपाल के साथ टहल रही थी।

पूरा गाँव मेले से लौट कर किरपाल और भगवन्ती की चर्चा कर रहा था और उधर रामलाल भगवन्ती को कमरे में बंद कर के उसे जूतों से मार रहा था। उस के दोनों हाथों की चूड़ियाँ फूट गयी थीं। उस की कलाइयों से खून बह रहा था। रामलाल की निर्मम मार से वह अपने घर में बंद इस तरह तड़प कर रो रही थी; जैसे, कसाई के कटघरे में गौ चिग्घार रही हो।

काफी रात बीत चुकी थी। घायल भगवन्ती अब भी बिना अन्न-पानी के कमरे में बंद, रो रही थी। सुभागी ने रामानन्द को विवश करके रामलाल के घर भेजा। जिस समय वह रामलाल के दरवाजे पर पहुँचा; उस समय रामलाल भोजन करके खाट पर बैठा हुआ कच्ची सुरती बना रहा था और अपने आप, बैंजूसिंह और किरपाल को गालियाँ सुनाता जा रहा था।

रामानन्द ने पास पहुँच कर अत्यन्त विनम्र शब्दों में कहा, "काका! जो हुआ उसे क्षमा करो!"

"क्षमा करूँ!" रामलाल ने गंभीरता से कहा, "किसे क्षमा करूँ?"

"काकी को।"

"तुम्हारी तरह मुझे अपनी नाक नहीं कटानी है रामानन्द!" रामलाल ने बरसते हुए कहा, "मुझे अपनी कुल मर्यादा की चिन्ता है! तुम्हारी औरत एक कलमुँही विधवा की लड़की है; तुम उसे

ले कर दुनियाँ में घुमाओ-फिराओ; खूब नचाओ। लेकिन मेरी स्त्री...... उस की एक-एक बोटी काट कर के मैं उसे धरती में गाड़ दूँगा; बैजूसिंह से अपनी जान की बाजी लगा दूँगा लेकिन अपनी कुल-मर्यादा पर आँच तक नहीं आने दूँगा।"

रामानन्द के पास कोई भी शब्द न था। वह चुप था। उसे लग रहा था; जैसे, रामलाल काका ने उसे अनायास एक ऐसे चाबुक से मारा हो, जो उस के सर से पैर तक उसे एकाएक जला गया हो।

वह चुपचाप अपने घर लौट आया।

रात भर रामानन्द और सुभागी को नींद न आयी। वे दोनों जागते रहे और भगवन्ती सारी रात अपने घर में बन्द रोती रही।

उसी सप्ताह के अन्त में भगवन्ती एकाएक घर से गायब हो गई। रामलाल रोता हुआ उसे ढूढ़ता रहा और एक दिन गाँव के चरवाहों ने नाग बाबा के कुएँ में देखा, भगवन्ती की लाश फूल कर पानी पर तैर रही थी।

८

सुभागी और रामानन्द की गृहस्थी इतनी शान्त और सुखी थी कि पूरा सिकन्दरपुर उन से स्पर्द्धा करता था। सुभागी अपने रामानन्द को पति के ही रूप में नहीं देखती थी, वरन वह अपनी सारी अनुभूतियों से उसे ईश्वर के रूप में पाती थी। उस की माँ जमुना ने ईश्वर और भक्त के सम्बन्धों को ले कर उसे कितनी कथाएँ बतायी थीं। सुभागी ने स्वयं रामायण, सुखसागर और प्रेमसागर आदि ग्रन्थों में ईश्वर की महानता-उदारता की कथाएँ पढ़ी थीं। ईश्वर अपने भक्तों को स्नेह-उद्धार के लिए कितने अवतार लेता है। रामानन्द के व्यक्तित्व में सुभागी ईश्वर के इन्हीं तत्वों को पाती थी। वह अब तक कभी-कभी अपनी स्थितियों को ले कर चिन्तन करने लगती थी कि अगर रामानन्द न होता; तो उसे कौन कुलीन ब्राह्मण अपनी पत्नी बनाता? पुरैना वालों ने तो यह सिद्ध ही कर दिया था कि सुभागी कलमुँही विधवा ब्राह्मणी जमुना की पापी सन्तान है। अगर रामानन्द ने उसका उद्धार न किया होता, तो उस की

7828

अकेली विधवा माँ क्या करती ! वह रो-पीट कर मर जाती और सुभागी सदा के लिए एक ऐसे रास्ते पर अकेली छुट जाती जिस के आगे कोई रास्ता न था; चारो ओर कुएँ थे, गड्ढे थे और ऊँचे-ऊँचे सरजू नदी के कगार थे।

सुभागी अब भी जब, अपने जीवन के उस कारुणिक अतीत को सोचती तो वह सर से पैर तक काँप जाती; फिर वह डरे हुए बच्चे की भाँति दौड़ी हुई रामानन्द के पास जाती और उस के अंक से चिपक जाती। रामानन्द हँसने लगता। स्नेह से वह सुभागी के माथे पर अपना हाथ फेरने लगता और सुभागी अपने को छिपाती हुई कहती—'देखो, मुझे अकेली छोड़ कर कहीं मत जाना।'

रामानन्द और फूट कर हँस पड़ता। लेकिन सुभागी उस के अंक में अपने मुँह को छिपाए कहती रहती, "मुझे अकेले सच, डर लगता है; घर में भी और खिड़की पर भी।"

रामानन्द मज़ाक करता, "सिकन्दरपुर कोई पुरैना गाँव थोड़े ही है !" सुभागी तुरन्त उत्तर देती, "सब गाँव एक ही तरह के होते हैं। किसी को सुखी देखकर वहाँ के भी लोग जलते थे; यहाँ भी लोग जलते हैं। वहाँ भी लोग अपनी औरतों को कसाई की तरह मारते थे। थोड़ी-सी गलती पर उन्हें कुआँ-इनार ताकना पड़ता था; ठीक यही हालत यहाँ भी तो है।"

सुभागी के इन उलहनों और दुश्चिन्ताओं का रामानन्द के पास कोई उत्तर न था। वह सुभागी को देखता हुआ बस मुस्कराता और धीरे-धीरे वह उदास हो जाता; तब सुभागी उसे प्रसन्न देखने के लिए हँसने लगती और उस के दाएँ हाथ को अपनी दोनो हथेलियों में कस लेती और अत्यन्त स्फुट-स्वर में कहने लगती—'तुम तो मेरे राम हो ! मेरे तो तुम ईश्वर हो !'

पूस की ठंडी रात थी और उस का पिछला पहर शीत-कुहरा और पाला से इतना भर रहा था कि कहीं हाथ पसारे न सूझता था। गेहूँ-मटर की फसल पूरी उभार पर थी और दोनों फसलों पर पाला मारने का डर सब किसानो को लगा रहता था। इस से खेती की रक्षा का केवल यही उपाय था कि दोनों फसलों की खूब सिंचाई हो और धरती की नमी कभी कम न होने पाए।

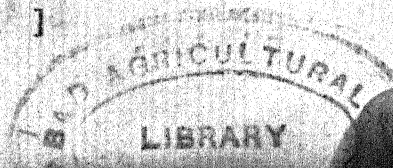
कुएँ पर पानी बाँधने का समय होते-होते एकाएक रामानन्द की आँखें खुल गयीं। वह राम-राम कहते हुए उठा और चुपके से दरवाजा खोल कर बाहर जाने लगा। लेकिन सुभागी जग गयी। वह भी जल्दी से उठ कर रामानन्द के पास चली आयी। सुभागी को मालूम था कि उस के हलवाहे हँसराज की तबियत खराब है इसलिए कुएँ पर पानी बाँधने के लिए रामानन्द को जाना होगा। पूस की इतनी काँपती हुई रात के भोर में अकेले रामानन्द कुएँ पर पानी बाँधने जाय और सुभागी अकेले कमरे में गर्म लिहाफ़ में सोए; उस से यह नहीं हो सकता था। अतएव वह आग्रह करके रामानन्द के साथ चली।

रामानन्द ने अपने कंधे पर कूंड़ और बरेत (रस्सी) रक्खा; सुभागी ने अलाव का सामान लिया और दोनो घर से बाहर निकले!

बेतरह कुहरा पड़ रहा था। पेड़-पौदों से शीत की नन्ही-नन्हीं बूँदें टपक रही थीं और भोर का सारा वातावरण शान्त-निस्तब्ध था। लेकिन बीच-बीच में कभी-कभी ठंडक की मारी हुई लोमड़ी अपनी 'खो खो-खो-खो' की पुकार से समूची निस्तब्धता को इस तरह भंग कर देती थी; जैसे, अंधकार की शान्ति में कोई रह-रह के कराह रहा हो।

पूरब के डाँड़े-कुएँ पर पहुँच कर सुभागी ने अलाव जलाया और रामानन्द पानी चलाने लगा।

"आवो अलाव के पास थोड़ी देर तक हाथ सेंक लो," सुभागी ने



कुछ ही क्षणों के बाद आग्रह किया, "हाथ गर्म हो जाय, फिर पानी चलाना।"

कुएँ का चलाया हुआ पानी जब नाली से खेत की ओर बहने लगा, रामानन्द तब कुएँ की जगत से उतर कर अलाव के पास आया और आग के सामने अपनी देह सेंकने लगा।

दूर की बोलती हुई लोमड़ी एकाएक पास अरहर के खेत में बोल उठी—'खो...खो...खो...खो।'

सुभागी ने पूछा, "लोमड़ी जैसे, रो रही है क्या?"

"उसे शीत और पाला मार रहा है!"

"तो वह और जानवरों की तरह अपनी माँद में क्यों नहीं छिप कर बैठ जाती," सुभागी ने कहा, और उत्सुकता से वह रामानन्द का मुँह देखने लगी।

रामानन्द ने बताया, "रात को वह अपनी माँद ढूढ़ नहीं पाती, इसीलिए तो वह रात भर अपनी माँद ढूढ़ती हुई रोती फिरती है कि खो...खो...खो...खो; यानी मेरी माँद खो गयी...खो गयी।"

कुछ क्षणों के बाद रामानन्द कुएँ से फिर पानी चलाने लगा और इधर धीरे-धीरे सुबह होने लगी।

रामानन्द ने सुभागी से कहा, "चलो, अब तुम्हें मैं घर छोड़ आऊँ नहीं तो तुम्हें कोई देख लेगा।"

सुभागी हँसने लगी, "कोई देख कर क्या करेगा?"

"बदनामी होगी!" रामानन्द ने कुएँ से नीचे उतरते हुए कहा।

"बदनामी किसे कहते हैं!" सुभागी ने मुस्कराते हुए कहा, 'तुम कुएँ पर पानी चलाओ और मैं खेत में पानी सँभालू! घर में अकेली

बैठी क्या करूँगी ?"

रामानन्द सुभागी को अपनी बाँह में समेट कर कुएँ से गाँव की ओर बढ़ने लगा। आसमान से धरती के बीच, चारो ओर शीत और कुहासा भरा था। पेड़-पौधे बड़े-बड़े वृक्ष तक उस में खो गये थे।

थोड़ी देर के उपरान्त जब रामानन्द दौड़ता हुआ कुएँ पर वापस लौटा; उस ने देखा, नाली में पानी सूख चुका था। वह बहुत तेजी से पानी खींचने लगा; और थोड़ी ही देर में उस ने नाली को पानी से लबालब भर दिया।

सूरज की किरनें फूट आयीं। रामानन्द को अकेले कुएँ पर पानी चलाते हुए पक्के दो घंटे बीत गए। वह बार-बार गाँव की ओर रास्ता देख रहा था और कभी-कभी कुएँ पर से पुकारने लगता—"खेलावन हया हो ! ऐ खेलावन !!"

रामानन्द की यह पुकार कुएँ से गाँव में आती और इस का स्वर सब से पहले सुभागी के कानों में टकराता और वह बेचैन हो रही थी कि अब तक खेलावन कुएँ पर नहीं पहुँचा और वे अब तक अकेले कुएँ पर पानी चला रहे हैं।

सुभागी ने आग्रह करके दादी को खेलावन के घर भेजा। खेलावन सर-दर्द का बहाना बना कर अलाव के पास बैठा था और उस ने कुएँ पर पानी चलाने से बिल्कुल इन्कार कर दिया।

दादी निराश कुएँ पर पहुँची और उस ने खेलावन के न आने की सूचना दी।

रामानन्द हतोत्साहित न हुआ। खेत में पानी सँभालने के लिए पल्टू आ गया था। उस ने तै किया कि आज वह डाँड़ के कुएँ पर दिन भर अकेला पानी चलाएगा और खेलावन को अब वह अपनी हलवाही से निकाल देगा। दादी हठ कर रही थी कि पानी तोड़ दिया जाय,

दूसरे दिन खेत सींच लिया जायगा। लेकिन रामानन्द की दृष्टि में यह संभव न था; क्योंकि उस कुएँ पर पानी लेने की बारी अब देर में आएगी और तब तक मटर की जवान फसल को निश्चित रूप से पाला मार ले जायगा।

पहर भर दिन चढ़ आया। रामानन्द अकेले कुएँ पर पानी चलाता रहा। सुभागी नाश्ता तैयार कर के अपना सर धुन रही थी। उस की इच्छा हो रही थी कि वह घर से निकल कर डाँड़े के कुएँ पर जाय, रामानन्द को नाश्ता कराए और स्वयं पानी चलाने लगे।

दादी नाश्ता ले कर कुएँ पर गयी। रामानन्द ने नाश्ता किया और वह फिर पानी चलाने लगा। दादी ने सलाह दी कि क्यों न वह एक मजदूर कर ले! थोड़ी मजदूरी ज्यादा देनी पड़ेगी तो क्या? लेकिन रामानन्द इस बात को सिद्ध करके दिखा देने पर तुला था कि उस में इतना पुरुषार्थ है कि हलवाहों के धोखा देने पर भी किसी कुएँ पर लिया हुआ पानी कभी टूट नहीं सकता।

सुभागी ने लखिया चमारिन को बुलाया उसे चुपके से उस ने एक रूपया दिया और कहा कि वह जल्दी से अपने पति भगेलू को डाँड़े के कुएँ पर भेजे।

भगेलू जब कुएँ पर रामानन्द को छुड़ाने गया, उस समय पाँच घंटे से ज्यादा दिन बीत गया था। रामानन्द कुएँ पर से उतरने के लिए तैयार न हो रहा था। भगेलू ने बहुत समझाया, प्रार्थना की, खेलावन की तरफ से उस ने माफी माँगी, तब रामानन्द ने उसे पानी चलाने दिया।

पानी चलाते हुए भगेलू ने रामानन्द से कहा, "भइया! जाओ खाना

खा कर आराम कर के तब कुएँ पर आना; तब तक मैं अपना बोआ (पारी) पानो चलाता रहूँगा !"

रामानन्द जब घर लौटा, उस समय सुभागी दोपहर का खाना बना-कर दरवाजे पर खड़ी-खड़ी उस की बाट जोह रही थी। रामानन्द को पा कर वह प्रसन्नता से आँगन में मुड़ी। आँगन में उस के हाथ-पैर धुलाते हुए उस ने देखा रामानन्द की दोनों हथेलियाँ बिल्कुल सुर्ख हो आयीं थीं। सुभागी अपने मन में ही तड़प कर रह गयी।

खाना खा कर रामानन्द ने आराम न किया। वह सीधे कुएँ पर जाने लगा और सुभागो निःसहाय दरवाजे पर खड़ो उसे देखती रह गयी।

एक घंटा रात बीतते बीतते पूरा खेत सिंच कर समाप्त हुआ; फिर रामानन्द कूँड़-बरेत लिए घर वापस आया। वह बेतरह थक गया था, लेकिन वह बहुत खुश भी था। उस का पूरा खेत सिंच गया; इस से अधिक खुशी उसे इस बात की थी कि उस ने अपने पुरुषार्थ को देख लिया।

खेलावन दूसरे दिन भी काम पर न आया और रामानन्द उसे बुलाने भी न गया; बल्कि उस ने मन-ही-मन में यह तै किया कि वह उसे हलवाही से निकाल देगा।

कुदार और हँसिया ले कर सुबह ही वह ऊख के खेत में गया और एक बोझ ऊख उस ने काट गिरायी। चार घंटे दिन चढ़ते-चढ़ते उस ने सारी ऊख छोल डाली। एक बोझ गन्ना निकला और दो बोझ उस के गेंड़ निकले। दो बार में उस ने दोनो चीजों को यथास्थान ला गिराया। गन्ने को दातादीन बाबा के कोल्हू पर रक्खा और गेंड़ को अपने नेसुहे पर।

गन्ने से रस पेरने के बाद रामानन्द ने थोड़ा-सा खाना खाया और शेष गन्ने का ताज़ा रस पिया और थोड़ी देर के बाद वह गेंड काटने के लिए नेसुहे पर बैठ गया और अनवरत दो घंटे तक नेसुहे पर गेंड़ासा

चलाता रहा।

चारा काटने के बाद उस ने बैलों की नाद में पानी भरा और उन में सानी बोझ कर उस ने बैलों को लगा दिया।

हाथ-पैर-मुँह धोने के बाद रामानन्द दरवाजे की खाट पर बैठा। दिन काफी ढल चुका था, मुश्किल से तीन घंटे दिन शेष थे। पूस महीने की हल्की धूप में वह अपनी थकान मिटाने लगा। वह थोड़ी देर के बाद खाट पर लेट गया और सुभागी दरवाजे पर खड़ी-खड़ी उसे देखने लगी।

रामानन्द वहीं से सर उठा कर सुभागी को देखता, मुस्करा देता लेकिन वह कुछ उत्तर न दे रहा था। वह थका-थका-सा वहीं लेटा रहा और थोड़ी देर के बाद वह जैसे, वहीं सो गया।

सुभागी ने अपने सर के आँचल को थोड़ा-सा आगे खींच कर अपने मुँह पर हलका-सा घूँघट बना लिया और बहुत तेज़ी से वह रामानन्द के पास चली आयी।

रामानन्द ने आँखें खोल दीं। सुभागी ने देखा उनकी आँखें लाल हो रही थीं। धूप में भी उस के रोंगटे खड़े थे।

सुभागी को देखते ही रामानन्द ने थके स्वर में कहा, "मुझे जूड़ी आने वाली है।"

यह कह कर रामानन्द खाट से उठा और घर में जाने लगा। सुभागी हतप्रभ हो रही थी। उस के मुँह से कोई शब्द न निकला। वह रामानन्द के साथ लगी हुई भीतर कमरे में आयी।

पलँग पर लेटते ही रामानन्द की जूड़ी एकदम बढ़ गयी। सुभागी ने उसे तीन लिहाफ दो कम्बल और एक चद्दर ओढ़ा दी; लेकिन उस की कँपकपी और शरीर का ज्वार कम नहीं हो रहा था। इतने बज़नी और गर्म ओढ़ने से दबा हुआ रामानन्द जाड़े से इस तरह गड़गड़ा रहा था,

जैसे, वह बर्फ पर नंगा सोया हो। सुभागी ने फिर अपने हाथ और सीने के दबाव से रामानन्द को ढक लिया। और उसे बहुत देर तक अपने अंक से दबाए, वह आतंकित, लेकिन निश्चेष्ट स्वर से धीरे-धीरे राम... राम...राम कहने लगी।

कुछ ही क्षणों के बाद रामानन्द की जूड़ी का तूफान थम गया। लेकिन उस के साथ ही साथ ज्वर के इतने तेज़ तूफान ने उस को अपने में ढक लिया; जैसे, समुन्द्र के उठते हुए ज्वार से उस के कगार का कोई छोटा-सा पौदा ढक गया हो। ज्वार के गर्भ में डूबा हुआ, भीतर ही भीतर वह पौदा अकुला रहा हो, उसकी साँसें टूट रही हों और उसका सर फट रहा हो; ठीक यही दशा रामानन्द की हो रही थी।

थोड़ा-सा दिन शेष रह गया था। फिर भी सुभागी ने उस कमरे में दिया जला दिया। रामानन्द बुखार में बेहोश पड़ा था। अब उस के ऊपर केवल एक लिहाफ थी; जिसे भी वह कभी-कभी अपने ऊपर से अलग हटाने लगता था। लेकिन उस के सर में इतनी पीड़ा हो रही थी; जिस से वह पूर्ण निःशक्त हो रहा था।

सुभागी सरहाने बैठी हुई रामानन्द के सर को तेल से दबा रही थी और अपनी सुप्त वाणी में वह अनवरत राम-राम कहती जा रही थी।

उस समय तक दादी डँड़वा कुएँ के जोगीबीर बाबा को एक चिलम गाँजा चढ़ा चुकी थी और काली माँई और डिवहार गोसाँई को पूजा मान चुकी थी।

रात भर सुभागी रामानन्द के सिरहाने बैठी रहीं। सुबह भोर में जब केवल एक घंटा रात शेष रह गयी, सुभागी ने देखा, रामानन्द बेखबर सो रहा था। फिर सुभागी को थोड़ी-सी सुस्ती और थकान का अनुभव हुआ। वह वहीं रामानन्द के सरहाने जमीन पर बैठी-बैठी पलँग से अपने दोनों हाथ और सर को टेक कर झपकी लेने लगी और

क्षणमात्र में ही वह उसी तरह सो गयी।

थोड़ी ही देर के उपरान्त वह स्वप्न में देखने लगी; उस के आँगन में कोई पालकी उतारी गयी है। उस का आँगन गाँव की औरतों से भरा हुआ है; लेकिन कोई गीत नहीं गा रहा है। सभी पालकी में बैठी हुई दूल्हन को देखने के लिए आतुर हैं। लेकिन कोई पालकी का ओहार नहीं हटा रहा है; बस, सब उस की ओर देख ही रहे हैं। उसी समय आँगन में सफेद वस्त्र पहने पाँच गातीं हुई औरतें आती हैं और बन्द पालकी के पास जाती हैं। वे पालकी का ओहार हटाती हैं; उस का बंद दरवाज़ा खोलती हैं फिर आँगन में शोर और हँसी फूटने लगती है। पालकी में कोई दूल्हन नहीं है; वह न जाने कहाँ चली गयी है। धीरे-धीरे आँगन औरतों से खाली हो जाता है, फिर आँगन में चार कहाँर आते हैं और पालकी को उठा कर, जैसे ही चलने लगते हैं; उसी क्षण पालकी की दूल्हन, परदे से अपना मुँह निकाल कर आँगन में देखने लगती है।

सुभागी एकाएक चौंक पड़ी। उस की आँख खुल गयी और वह जमीन पर गिरते-गिरते बची।

सुबह हो रही थी। उस का दम फूल रहा था। वह आँगन से बरामदे को पार कर खिड़की के पिछवाड़े गयी। भोर हो चुका था लेकिन भोर के प्रकाश को शीत और कुहासे का धुआँ इस तरह दबा रहा था; जैसे दुःस्वप्न की याद सुबह मन के आह्लाद को दबाता जा रहा हो।

सुभागी खिड़की से भाग कर दादी के पास आयी और अपने देख हुए स्वप्न को उस से कहने लगी। दादी ने फौरन सोचा और सुभागी

से कहा। यह भगवती माई के लस्कर का सपना है । माई मोर पालकी पर बैठ कर मेरे आँगन में आयी थीं; और चली भी गयीं। अब सब कुशल-मंगल हो जायगा।

यह बता कर दादी सुभागी को ले कर देवतन के कमरे में गयी और हाथ जोड़ कर प्रार्थना करने लगी—'हे फूलमती माई! मेरे रामू को अच्छा करो। मेरे आँगन में आज रात को देवी जी पालकी पर बैठ कर आयीं थीं और चलीं गयीं। यह आप की किरपा है मेरी मइया! मेरा रापू, मेरी दूल्हन बहू फूले-फले मेरी मइया! ये दोनों हर नौरातन (नौरात्र) को देवी जी को सवा घड़ा धार-लस्कर[1] चढ़ाएँगे।

तीसरे दिन रामानन्द का बुखार बिल्कुल उतर गया। सुग्गी उस दिन इतनी प्रसन्न हुई कि उस ने अत्यन्त स्वस्थ मन से उसी रात, देवी जी को उनका मानता पूरा किया।

रामानन्द ने दोपहर को मूँग की खिचड़ी खायी। घर से निकल कर वह बाहर दरवाजे पर बैठा; बैलों की देख-रेख की और इधर उधर गाँव में भी टहल आया। रात को उस ने दाल-चावल-रोटी, सब्जी और अँचार-खटाई आदि सब कुछ खाया। रात को उसे बहुत अच्छी नींद भी आयी।

सुभागी ने शान्त मन से साँस लिया कि रामानन्द पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गया। दूसरे दिन रामानन्द खेती-बारी का काम करना चाहता था लेकिन सुभागी ने अपने आग्रह से रामानन्द को पूरी तरह से आराम करने के लिए बाध्य कर दिया।

दोपहर का खाना खा कर रामानन्द दरवाजे पर आया और वहीं धूप में, खाट पर आराम करने लगा। धूप की किरने उसे बहुत कोमल

---

१. मिट्टी के घोड़े हाथी

लग रही थीं; वह खाट पर बिल्कुल चित लेटा हुआ था। कुछ क्षणों के बाद उसका सर एकाकक भारी होने लगा और धूप की किरने उसे इस तरह लगने लगीं, जैसे; बर्फ की नन्ही-नन्ही बूँदें उस के ऊपर बरस रही हों और सर से नाखून तक चीटियों के समूह ने उसे घेर लिया हो।

वह खाट से सहसा उठा, बरामदे में गया, कम्बल लिया और उसे ओढ़े हुए वह फिर धूप में लेट गया। लेकिन धूप में और कम्बल के नीचे उस का शरीर ठढक से काँपने लगा। सब रोंगटे रह-रह कर खड़े हो जाते और उस की आँखों से आग की चिनगारियाँ फूटने लगीं।

वह काँपता हुआ खाट से उठा, घर में गया और बिना किसी को बताए वह कमरे में उसी पलँग पर लेट गया। अपने ऊपर उस ने दो लिहाफ और कम्बल ओढ़ लिए और स्वयं वह उतने ओढ़ने के नीचे हाथ पैर सीना सब को एक में भींच कर हु...हु .हु..हु कर के काँपने लगा और मन ही मन, राम-राम कहने लगा।

सुभागी ने स्वस्थ मन से खाना खाया, और रामानन्द को देखने वह दरवाजे पर गयी। वहाँ खाट खाली थी। उस ने थोड़ा-सा घूँघट निकाल बरामदे में बढ़ कर इधर-उधर देखा, रामानन्द कहीं भी न दिखायी पड़ा। वह बहुत देर तक रामानन्द की प्रतीक्षा में दरवाजे से लगी खड़ी रही, फिर आँगन में लौट आयो। न जाने क्यों रामानन्द को तुरन्त देखने के लिए उस की तीव्र इच्छा हो रही थी। वह अत्यन्त अलस मन से अनायास अपने कमरे में गयी। आश्चर्य से उस ने पलँग पर देखा और उस का माथा ठनका। लिहाफ उस के मुँह पर से थोड़ा-सा हटा कर उस ने उस के माथे पर अपनी हथेली रक्खी और अनुभव किया कि रामानन्द के शरीर से बुखार की लपट उठ रही थी और वह आँख मूँदे, जैसे बेहोश, मुँह से तेज-तेज साँसे ले रहा था।

सुभागी सर थामे वहीं जमीन पर बैठ गयी। वह सोचने लगी, यह

देवी जी का कोप है या मलेरिया है। वह सोचती रही और कुछ क्षणों के बाद उसे लगने लगा; जैसे धरती घूम रही हो। और वह बैठी-बैठी जमीन पर गिर पड़ेगी।

वहाँ से वह तुरन्त उठी। आँगन में आयी। दिन काफी ढल चुका था। दादी से उस ने रामानन्द की स्थिति बतायी और उदासी से वह दादी का मुँह देखने लगी।

दादी ने बताया कि देवी जी जाते-जाते अपना प्रसाद देती हैं और इस के बाद सब आनन्द कर देती हैं। सुभागी के सामने यह स्पष्ट था कि रामानन्द को मलेरिया है, लेकिन दादी के विश्वास भरे दिमाग के सामने वह कुछ नहीं कह पाती थी।

दो-दो दिन का अन्तर देते हुए रामानन्द की जूड़ी-बुखार को एक महीना हो गयावह बिल्कुल दुबला हो चला था। जब उसे बुखार का दौड़ा आता, तब वह खाना-पीना छोड़ कर पलँग पर पड़ जाता; लेकिन तीसरे दिन जैसे, ही उसे बुखार उतरता वह अवश्य खाना खाता और सुभागी न सही तो दादी उसे जरूर खाना खिलाती। अब सुभागी जब दादी के सामने रामानन्द की बीमारी को ले कर रोती, अपने देवतन बाबा और दादी की फूलमती की दुहाई देती; तब दादी कुछ उत्तर न देती, वह चुप रहने लगी थी।

उस दिन बुखार उतरा हुआ था। सुभागी ने रामानन्द को सहारा देते हुए कमरे से आँगन में निकाला। आँगन की धूप में उसे चारपाई पर बिठाया। रामानन्द को भूख लगी थी और वह कुछ खाना-पीना चाहता था। सुभागी ने स्नान कर के रामानान्द का हाथ धुलाया और पाँच सेर अन्न उस के हाथों से छुला कर वह स्वयं उसे मिसिरी

गोसाँईं को देने के लिए खिड़की के रास्ते उन के घर चली गयी।

थोड़ी देर के बाद जब वह लौटी, उस ने देखा, दादी सामने बैठी हुई रामानन्द को ढेर-सा चना, चावल का भूजा चबवा रही थी। पास आ कर उस ने और भी देखा कि भूजे के साथ एक मूली और खटाई का एक टुकड़ा भी था। सुभागी की आँखों में आँसू भर आये। वह किससे क्या कहे? रामानन्द क सामने से वह कैसे भूजा छीन ले; वह दुश्चिन्ता में खड़ी सोचती रही और उसकी आँखों में आँसू भरते रहे।

रामानन्द ने जैसे ही देखा कि सामने सुभागी डबडबाई हुई आँखों से चुपचाप खड़ी है; उस ने भूजा चबाना बन्द कर दिया और दादी वहाँ से अपने आप खिसक गयी।

सुभागी कुछ बोली नहीं। वह सीधे चौके में गयी, और शीघ्रता से भोजन तैयार करने लगी।

आँगन भर में धूप फैल चुकी थी। दाल को चूल्हे पर छोड़ कर सुभागी आँगन में आयी। वह रामानन्द के शरीर में तेल लगाना चाहती थी, अतएव उस ने उस के कपड़े उतारना शुरू किए। कुर्ता उतार कर जब वह उस की बनियाइन उतारने, लगी उस क्षण सुभागी ने बहुत नजदीक से रामानन्द की आँखों में देखा। आँखों के कोये पीले पड़ रहे थे; उसे कँवरु हो गया था। सुभागी ने फिर अपने को छिपाते हुए उस की बनियाइन उतारी और उसे खाट पर एकदम चित सुला दिया। अब सुभागी अपने को रोक न सकी। बरबस उस की आँखों में आँसू बरसने लगे। रामानन्द का शरीर बिल्कुल पीला पड़ गया था। उसका पेट दुबले शरीर के अनुपात से इस तरह निकल आया था; जैसे, दूध न पाए हुए नन्हें-नन्हें बच्चों के पेट निकल आते हैं।

रामानन्द ने घबड़ाई हुई सुभागी को मुस्कराते हुए समझाया "इस में क्या घबड़ाने की बात! फिर मोटा हो जाऊँगा। जूड़ी-बुखार या

मलेरिया भी कोई रोग है।"

शरीर में तेल लगाते-लगाते जब सुभागी उस के पेट पर तेल लगाने लगी, उस ने अनुभव किया, पसलियों को नीचे बायीं ओर उसे तिल्ली बढ़ आई थी।

रामानन्द को केवल रोटी और सरसों का साग खिला कर सुभागी अपने घर से सीधे मिसिरी गोंसाई के घर गयी और कोई अच्छा वैद्य बुला लाने के लिए उस ने प्रार्थना की।

पहर भर दिन रहते-रहते मिसिरी गोसाँई हरदयालपुर के नामी वैद्य को साथ ले कर सुभागी के घर आए!

रामानन्द की नाड़ी देख कर वैद्य ने बताया कि उस के भीतर खून की कमी हो गई है। तिल्ली बढ़ गयी है और उसी के फलस्वरूप उस की आँखों में कँवरू[१] भी हो गया है। ज्वर-जूड़ी दोनो अवधि से अधिक शरीर में रहने के नाते अब उन का रूप अधिक भयानक हो गया है।

सुभागी घूँघट के नीचे रोती रही और उस ने वैद्य का पैर छू कर रामानन्द के स्वास्थ्य की भिक्षा मागी। वैद्य जी ने स्वयं एक शरीर-लेपन की औषधि दी और उन्होंने औषधियों की एक लम्बा-सी सूची बनवा कर दूसरा नुस्खा तैयार कराया। उसी समय सुभागी ने गोसाँई के साथ अपने हलवाहे हंसराज को औषधियाँ लाने के लिए लालगंज भेजा।

और वैद्य जी को सुभागी ने प्रार्थना कर के घर पर रोक लिया। रामानन्द को उस दिन बुखार बिल्कुल न था। वैद्य जी उस से बातें करते रहे और उन्होंने अपनी वैद्यकी की सफलता का पूरा ब्योरा दे

---

[१] पीलिया।



दिया कि वे किस तरह पूरे ज़िले भर में प्रसिद्ध हैं। सब बड़े-बड़े ज़मींदार-चौधरी और ताल्लुकेदारों के यहाँ, घर-परिवार में उन की ही औषधियाँ चलती हैं। उन्हें बड़ी-से-बड़ी दु:साध्य बीमारियों को दूर करने में सफलता मिलती रही है।

पहर भर रात बीतते-बीतते गोसाँई और हंसराज रामनगर से औषधियाँ ले कर वापस लौटे। उस समय तक वैद्य जी अपनी वैद्यकी की डींग हाँक कर सुभागी से दस रुपये गाँठ चुके थे।

दूसरे दिन वैद्य जी सब औषधियाँ बना कर और सेवन की विधियाँ बता कर अपने घर के लिए विदा हो गए। सुभागी रामानन्द को पूर्णतः अपनी देख-रेख में रखने लगी। दादी के स्नेह के फलस्वरूप रामानन्द को जो खाद्य-अखाद्य मिलता था, उस ने बंद करा दिया और स्वयं चौबीस घंटे उस के पास रहने लगी।

पन्द्रह दिनों में रामानन्द का बुखार दूर हो गया। लेकिन उस अवधि तक उस का स्वास्थ्य बहुत कुछ नष्ट हो चला था। उसे अब खाना रुचि-कर न लगता था और जो कुछ खा भी लेता था वह उस के कलेजे पर जैसे, रक्खा रहता था।

सुभागी जहाँ कहीं भी, जिस किसी से भी यह सुनती थी कि अमुक वस्तु, अमुक खाद्य पदार्थ पौष्टिक है, स्वास्थ्यकर है; वह उसे सौ यत्न करके जुटाती और रामानन्द को खिलाने का प्रयत्न करती। वह चाहती थी कि बीमारी से टूटा हुआ उस का ईश्वर जल्द से जल्द अपनी पिछली स्वाभाविक दशा पर पहुँच जाय, वही फैला हुआ ऊँचा सीना, गोल-गोल बाहें और रतनारी आँखें।

माघ का महीना बीतने जा रहा था। रामानन्द की बीमारी ने

उस की रबी-फसल पर बहुत बुरा प्रभाव डाला था। पूरब के सिवान में पक्के दो बीघे मटर को पाला मार गया था और फसल आधी हो गयी थी।

दक्षिण के सिवान में टेढ़वा खेत का गेहूँ उचित समय पर पानी न पाने के कारण दब कर रह गया था। पश्चिम सिवान में बाग के ओछाँह के पास, अरहर की खेती को नीलगायों ने चौपट कर दिया था।

सुभागी विवश हो कर, अब घर से बाहर निकलने लगी। उस का दूल्हनपन, उस का गंभीर घूँघट धीरे-धीरे कम होने लगा। वह घर भी देखती और अब उसे अपनी बची हुई खेती भी देखनी पड़ती।

एक दिन दोपहर की धूप में सुभागी अपने आँगन में बैठी हुई रामानन्द के शरीर में तिल का उपटन लगाने चली। कपड़े उतारने के बाद, जैसे ही वह रामानन्द के पैर को छूने लगी; वह सूख-सी गयी। उस ने देखा, दोनो पैरों में सूजन आ गयी थी; फिर उस ने उस के पूरे शरीर को एक काँपती हुई दृष्टि से देखा। शरीर भर में सूजन थी। मुख पर जैसे, खून की जगह पानी भर रहा था। गाल और आँखों के बीच के उभार में एक पीला-पीला चिन्ह सुभागी की दृष्टि में इस तरह खिंच गया जैसे, कोई भयानक स्वप्न रात के अंधे सन्नाटे में खिंच जाता है।

उस ने रामानन्द से कुछ न कहा। अपनी काँपती हुई दृष्टि को उस ने रामानन्द की थकी हुई उदास दृष्टि से छिपा लिया।

वह चुपचाप, अपनी दृष्टि में एक मौन पीड़ा लिए हुए रामानन्द के शरीर में उपटन लगाने लगी।

"उदास क्यों हो सुभागी," रामानन्द ने मुस्कराते हुए कहा, "देखो, मैं मोटा तो हो रहा हूँ। मुझे अब खाना भी तो पचने लगा है।"

सुभागी प्रयत्न करके मुस्करा दी; लेकिन कुछ बोली नहीं।

"सुना है, तुम बहुत अच्छा गीत गाती हो," रामानन्द ने पूजा भाव से कहा, "मुझे लेकिन कभी नहीं सुनाया!"

सुभागी उदास हो गयी। उस ने अपने को सँभाला, झट से वह मुस्करा दी और उसे देखती हुई मुस्कराती रही। फिर भी वह कुछ बोली नहीं।

"गाओगी नहीं, तो तुम्हारे गीत भूल जाएँगे..... फिर......।" रामानन्द कहते-कहते सहसा रुक गया। उस के फूले हुए पीले चेहरे पर लज्जा और संकोच की एक ऐसी लहर दौड़ गयी; जैसे वह पूर्ण स्वस्थ हो गया हो। उस क्षण सुभागी ने देखा, न जाने कहाँ से रामानन्द के मुख पर तमाम खून दौड़ आया था।

इस खून का स्रोत कहाँ है! किस प्रेरणा शक्ति से खून की वह अद्भुत लाली इनके पीले चेहरे को एकाएक रँग गयी है! सुभागी अपने भोले मन में सोचने लगी, 'गाओगी नहीं, तो तुम्हारे गीत भूल जाएँगे...फिर......।' इस 'फिर' के आगे क्या आने वाला था, जिसे इन्होंने लज्जावश छिपा लिया है। सुभागी इच्छा करने लगी। क्यों न वे इसी बात को 'गाओगी नहीं तो तुम्हारे गीत भूल जायँगे...फिर...'बार-बार दुहराएँ और बार-बार इनके पीले, सूजे हुए चेहरे पर उसी तरह रक्त की लाली फिरती जाय, फैलती जाय और ये स्वस्थ हो जाँय। फिर सुभागी उसे अपनी बाहों में छिपा कर घर में, आँगन में, मचान पर, खेत में इतने गीत सुनाए, इतनी ढोलक की तान लगाए कि उस से सिकन्दरपुर की सारी उदासी, सारा सन्नाटा खो जाय।

सुभागी क्षण-क्षण में रामानन्द के मुँह को देखती जा रही थी और उस की दृष्टि कुछ ढूढ़ रही थी।

"क्या देख रही हो मुझे!" रामानन्द ने मुस्करा कर पूछा।

"बता दूँ ?" सुभागी बच्चों की तरह यह कह कर शर्मा गयी।

"हाँ बता दो !"

"गाओगी नहीं तो तुम्हारे गीत भूल जायँगे......फिर...। 'फिर' क्या, बताओ न ?"

रामानन्द खुल कर हँस पड़ा। पूरे दो महीने के बाद सुभागी ऐसी हँसी सुन सकी। सूजे हुए शरीर को वह भूल गयी। उसे लगा, वह उस रामानन्द के शरीर में उपटन लगा रही थी जो स्वस्थ है - सुन्दर है, महान है और उस का ईश्वर है। जिसकी गोरी-स्वस्थ बाहों में इतनी शक्ति है कि वह उस से सुभागी को कमर से बाँध कर अपने बराबर उठा लेता है। आँगन भर में उसे लिए हुए चक्कर करता हुआ हँस-हँस कर कहता है—सुभागी ! ओ सुभागी !! मैं तुझे इसी तरह लिए हुए आकाश में उड़ सकता हूँ। रामनगर क्या कलकत्ते तक भाग सकता हूँ।

"'फिर' क्या, बताओ !" सुभागी ने शिशुवत आग्रह किया।

"बातऊँ !...बताऊँ !!"; रामानन्द के चेहरे पर फिर वही अरुण रेखाएँ दौड़ आयीं !

"हाँ बता दो न...बोलो !" सुभागी प्रसन्नता से पागल थी।

"गीत नहीं गाओगी, तो तुम्हें गीत भूल जाएँगे...फिर...फिर..!" रामानन्द एकाएक रुक गया, जैसे, उस के गले में एकाएक कुछ टूट गया।

"हाँ फिर !" सुभागी ने नयी प्रेरणा दी।

"फिर....!" जब तुम माँ हो ओगी..तब तुम अपने बच्चे को क्या गीत सिखाओगी ?"

सुभागी की दृष्टि अपलक रामानन्द के पूरे चेहरे पर रुकी रही। लेकिन उस ने खून की उस लाली को इस बार न देखा। उस ने इस बार कुछ और देखा-अजीब करुणा। रामानन्द की आँखें आँसुओं से डबडबा आयी थीं और उस का पूरा चेहरा बेहद उदास हो गया था।

राजित

और स्वयं उस की दशा ?

'फिर जब तुम माँ हो ओगी.....' रामानन्द के इतने ही शब्दों ने सुभागी के सारे रक्त को ऊष्ण कर दिया और धक् धक् करते हुए उस के हृदय ने ऊपर की शिराओं में इतना रक्त बहा दिया कि उस का चेहरा उस क्षण स्वस्थ खून की लहरों से भर गया और उस के ओंठ, मस्तक, आँख और कान तप्त हो उठे। उसे उस पल, ऐसा लगा; जैसे, उस के पैर में से कोई मछली दौड़ती हुई शरीर की सब नसों में घूम गयी हो और हृदय की गति में उछलती हुई उस के चेहरे पर छा गयी हो और फिर आँखों के रास्ते वह बाहर निकल गयी हो।

सुभागी का हृदय अब तक धक-धक कर रहा था और उस की आँखें भर आयी थीं; क्योंकि आँसुओं के साथ ही वह मछली सरक कर भागी थी।

और वह मछली थी क्या !

क्या वही रामानन्द का खून था। वही उस के चेहरे की लाली थी, जो 'फिर' के आगे अपने पंख तान कर रुकी हुई थी और अब सब तोड़ कर भाग गयी, वह अरुण मछली। वह सुभागी की नसों के रास्ते भाग निकली...अजीब थी वह अदृश्य मछली !

सुभागी के भीतर एक अव्यक्त आवेश फैलने लगा। वह रामानन्द के पास से तेज़ी से उठी। दादी खेत में गयी थी। उस ने बाहर का दरवाजा बंद किया और दौड़ कर पिछवाड़े की खिड़की बंद की। आँगन में उतरते-उतरते उस के भीतर का रामानन्द, जैसे सुभागी को पुकारता हुआ कह रहा हो—पकड़ ले उस मछली को ! अपने गीतों से बाँध ले उसे !! जाने न पाए वह मछली !!!

सुभागी रामानन्द के पूरे शरीर पर उपटन लगा चुकी थी। रामानन्द के शरीर भर में हाथ-पैर अपेक्षाकृत अधिक सूजे हुए थे। अब सुभागी

फिर से पैर में, वैद्य का दिया हुआ एक विशेष तेल लगाने लगी।

और निःसंकोच सुभागी गाने लगी, बिना किसी झिझक और शर्म के, जैसे भक्त भावोन्मेष में अपनी सीमाओं को तोड़ कर ईश्वर के सामने गाने लगता है—

पहला दृश्य।

मैं अब घर में न सोऊँगी मेरे राजा! मुझे गर्मी लगती है। खिड़कियाँ खुली रहती हैं, तब भी। मेरे लिए उस रेत के मैदान में एक बँगला छवा दो। हम वहीं सोएँगे और जमुना की ठन्डी-ठन्डी लहरें हमें पंखा झलेंगी। वहाँ जब चाँद हमारी खुली हुई खिड़कियों से हमें झाँकेगा तब हम उसे मना कर देंगे। और वह मान जायगा।

दूसरा दृश्य।

साजन अभी न जाओ। देखो मैं काँप रही हूँ न! मुझे अपने हाथ से छूओ। नहीं, नहीं...ऐसे नहीं। पहले मेरे घूँघट को हटाओ न! हाँ, अब देखो अब, मेरी आँखों में एक दूल्हन बैठी है न! वह कुछ कहेगी नहीं, वाणी रहते हुए भी कुछ नहीं बोल पाएगी, बस, जमीन में सिर गाड़े, अँगूठे से एक छोटा-सा गढ़ा बनाती जायगी और जब तुम बिना उसे मनाए चले जाओगे। तब वह इसी तरह रोती रहेगी और आँसुओं से उस गड्ढे को भर देगी। अभी मत जाओ मेरे राजा। अभी तो मेंहदी नहीं छुट सकी है। सुहाग के काजल अभी लगे हैं। मैं ने अभी वह चुनरी नहीं बदली। देखो ये बिछुए; ये पायल, ये मेरी हथेलियाँ देखो, मेंहदी का रंग कितना चटक है। इसे मेरी उस सखी ने रचाया था जिस ने तुम्हारे जामे को अपनी बाहुओं में बाँध लिया था और तुम उसे छुड़ा न सके थे।

तीसरा दृश्य।

बोलो। कुछ कहते जाओ। आज हम सारी रात इसी तरह बिता

देंगे। ऊख के खेत में महोख बोल रहा है। कछार में सारस का जोड़ा बोल रहा है। सुनो, टिटिहरी बोलती हुई क्या कह रही है?

मेरे हाथ को जोर से दबाओ, और जोर से दबाओ न! फिर मैं चिराग को बुझा दूँगी। खिड़की के बाहर नीम की पत्तियाँ हवा में सनसनाएँगी। टिकुली जैसी, इमली की पत्तियाँ बरस पड़ेंगी। रूठो नहीं राजा! मुझे छोड़ कर मत जाओ। नहीं तो यह रात वह चाँदनी, दोनों मुझे डरायेंगी। नीम और इमली की सनसनाती हुई पत्तियाँ मुझे डँस लेंगी। मैं काँप रही हूँ। मुझे सँभाल लो, फिर चले जाना; नहीं तो ऊख में महोख सदा बोलता रह जायगा। बँसवारी में बनमुर्गियाँ कराहती रह जाएँगी। सारस प्यासा रह जायगा। टिटिहरी पुकारती रह जायगी और यह चिराग़ इसी तरह सारी रात जलता रह जायगा।

और चौथा दृश्य।

मुझसे अब मेरा आँचल नहीं सँभलता। न जाने क्यों, बार-बार खु लजाता है। लोग मुझे देखते रह जाते हैं। क्या करूँ; मेरी सब चोलियाँ छोटी पड़ गयीं। अब मेरी गोद में कुछ रख दो। मेरा आँचल प्यासा है...।

और एक अधूरा दृश्य।

सुभागी पूरा चित्र खींचने ही जा रही थी कि रामानन्द सहसा वहाँ से उठ पड़ा और जैसे, वह दरवाजे की ओर भागने लगा हो। उस की साँसें एकाएक फूलने लगीं, और वह काँपने लगा।

सुभागी ने बरामदे में बढ़ कर रामानन्द को अपनी बाहुओं में सम्हाल लिया; वह लड़खड़ा कर गिरने ही जा रहा था।

"कहाँ जा रहे हो?" सुभागी ने घबड़ा कर पूछा।

"दरवाज़े पर!" काँपती हुई आवाज़ से रामानन्द ने उत्तर दिया।

"क्या बात है ? गीत अच्छे नहीं लगे ?"

"बहुत अच्छे लगे तभी तो," रामानन्द ने अब स्वस्थ मन से कहा, "देखो मैं कितना प्रसन्न हूँ । कल हम लोग सागरा चलेंगे । उस बार झडुल्ले बाबा का हम लोगों ने दर्शन नहीं किया था ना"

"क्या होगा दर्शन कर के !" सुभागी ने लजाते हुए पूछा ।

"अपने इतने अच्छे-अच्छे गीत किसे सिखाओगी ?"

"धत् !"

सुभागी ने आँचल से अपना मुह ढक लिया । रामानन्द आँगन में उतर आया । आँगन में खड़ा-खड़ा वह उस स्थान को देखने लगा जहाँ सुभागी ने बैठ कर उसे गीत सुनाए थे ।

९

पाँचवें दिन रामानन्द की बैलगाड़ी सिकन्दरपुर से सीधे चल कर सागरा में भझुल्लेबाबा की कुटी पर रुकी। उस समय पहर भर दिन चढ़ चुका था। लेकिन कुटी के साधू लोग अब तक धुईं रमाए अपने-अपने आसन पर बैठे थे।

रामानन्द के हाथ-पैर फूल आने से अब वह अधिक दूर न चल सकता था, लेकिन उस में चलने की हिम्मत अवश्य थी। सुभागी के साथ, जब वह डंडे के सहारे सगरे में स्नान करने के लिए चला; तब पैंदल चलते हुए उसे ऐसा लगा रहा था, जैसे फूले हुए पैरों का खून उस के पतले चमड़े को फोड़ कर अभी बाहर बह निकलेगा।

रामानन्द किसी तरह सगरे तक पहुँच गया, लेकिन उस ने सुभागी से उस कष्ट को न बताया।

उस भयानक अनुभव को न स्पष्ट होने दिया; जिसे वह प्रत्येक पग चलते हुए भोग रहा था।

सगरे से स्नान करने के बाद वे दोनों कुटी की ओर बढ़े। कुटी पर और भी औरतें आयी थीं। सब कुटी की परिक्रमा कर चुकी थीं और अब साधुओं के पास बैठी-बैठी उन के बचन सुन रही थीं।

जिस समय सुभागी कुटी की परिक्रमा करने चली, उस समय वह बिल्कुल अकेली थी। रामानन्द कुटी के सामने सर टेके हुए प्रार्थना कर रहा था। शेष औरतें और उन के पति अलग-अलग साधुओं के पास बैठे थे।

जैसे ही सुभागी आँचल फैला कर परिक्रमा के लिए अपने पैर बढ़ाने लगी; उस ने सुना, पीछे से कोई ठहाका मार कर हँस रहा था।

लेकिन इससे क्या! सुभागी ने बहुत तेजी से कुटी की सातों परिक्रमाएँ समाप्त कर दीं। उसे परिक्रमा करते समय लग रहा था; जैसे, उस के पीछे-पीछे वही ठहाका हवा के शून्य में खिंचा हुआ उस के पीछे-पीछे चल रहा था।

सुभागी बिल्कुल न समझ पा रही थी। लेकिन जिस समय वह कुटी की परिक्रमा समाप्त कर के रामानन्द के सामने खड़ी हुई; उस की दोनों आँखों में आँसू थे।

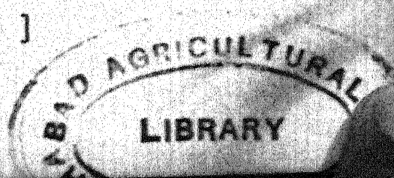
"अपनी आँखें तो पोंछ डालो सुभागी!"

रामानन्द के यह कहने पर सुभागी को केवल वही ठहाका याद आया और कुछ नहीं।

उस ने आवेश में पूछा, "हमारे पीछे कौन हँस रहा था!"

रामानन्द ने उदासी से साधू के उस जवान चेले की ओर इंगित किया; जो भाँग की पत्तियों में से उस के बीज अलग कर रहा था।

सुभागी तेजी से उस के पास बढ़ गयी और निश्चित स्वर में उस ने



पूछा, "तुम मुझ पर क्यों हँसे ?"

"मतवा, मैं तुम पर नहीं हँसा; तुम्हारे ईश्वर पर हँसा !"

"क्या मतलब !"

"माता, पहले तुम अपने पति के मर्ज की दवा करो," चेले ने कहा, "उस मर्ज के बाद इस कुटी का दर्शन है। यह मर्ज बड़ा खराब है !" 'यह कोई मर्ज नहीं है !" सुभागी ने बताया, "इन्हें दो-ढाई महीने जूड़ी बुखार आया है, कमजोर हो गए हैं; इसी से इनके हाथ पैर में सूजन है। यह तो अपने आप बिल्कुल ठीक हो जायगा...खाने-पीने से। मैं इन्हें दूध-घी-फल-मेवे से पाट दूँगी !"

चेला फिर ठहाका मार कर हंस पड़ा। इस बार कुटी के आस-पास, सब बैठे हुए लोग इधर ही देखने लगे।

सुभागी घबड़ा गयी।

चेले ने धीरे से कहा, "मतवा ! तुम्हारे पति को मामूली मर्ज नहीं है, उसे कोढ़ हो रहा है !"

सुभागी को जैसे, किसी ने उस क्षण उसे कमर से एकाएक तोड़ कर ज़मीन पर बिठा दिया हो। उस की पलकें खुली रह गयीं और वह देखती रह गयी।

सुभागी की बैलगाड़ी सिकन्दरपुर की ओर चलने को हुई। उसी समय सुभागी को सागरा का सीताकुंड याद आया। और उस विश्वास-निष्ठा की याद आयी कि सीताकुंड के पानी-कीचड़ के स्पर्श से लोगों के बड़े से बड़े रोग और व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं।

बैलगाड़ी कुटी से चल कर सीताकुंड पर आकर रुकी। सुभागी ने रामानन्द को जमीन पर उतारा। वह चाहती थी कि रामानन्द सीताकुंड

में उतरे और वहाँ पानी-कीचड़ में अपने हाथ-पैर डुबो कर बाहर निकले। लेकिन रामानन्द की हिम्मत पस्त थी। वह किसी तरह कुंड में उतर तो सकता था, लेकिन निकलता कैसे! यही उस की दुश्चिन्ता थी।

सुभागी ने मन-ही-मन, संकल्प किया कि वह रामानन्द को कुंड में उतारेगी अवश्य और उस ने अपना संकल्प पूरा भी किया। लेकिन जब वह रामानन्द को सहारा देती हुई उसे ऊपर चढ़ाने लगी, रामानन्द एकाएक पैर की पीड़ा से चीख पड़ा। उस के दाएँ पैर के चमड़े कई जगह फट गए और पैर से खून बह चला। ऊपर से हंसराज दौड़ा। दोनों ने रामानन्द को उस की बाहुओं से उठा लिया और सब कुंड के बाहर हो गए।

दिन ढल चुका था। फागुन का पछियाँव बहुत तेजी पर था सुभागी को ज्ञान था कि फगुनहट में शरीर का खून पतला होने लगता है। शरीर में कहीं थोड़ा-सा घाव हो जाने पर खून बह निकलता है और उस पर पछियाँव की चोट बहुत दुखदायी होती है। सुभागी ने रामानन्द के दाएँ पैर के घाव में सेम की पत्ती के रस निचोड़ कर उसे भर दिया और पूरे पैर को उस ने कपड़े से बाँध दिया।

रास्ते भर सुभागी ने अनुभव किया। रामानन्द कितना चुप-उदास हो गया था। उस के चेहरे की करुणा ऐसी लग रही थी; जैसे, स्मशान पर चिता जल रही हो और उस की धधकती हुई लपटों को देखता हुआ वह एकाकी पुरुष बैठा हो; जिस ने कफ़न लपेट कर चिता में आग लगायी हो।

सुभागी रामानन्द को देखना चाहती थी; लेकिन रामानन्द उस से अपनी आँखें चुरा रहा था। वह शून्य में देखता, उड़ती हुई धूल में देखता; और जहाँ कहीं भी पीपल-बरगद के पत्तों से हवा का संघर्ष उठता; वह न जाने क्यों उसी ओर कान लगा देता।

"उस ने झूठ कहा है !" सुभागी रास्ते में एकाएक जैसे, चीख पड़ी हो, "तुम्हें वह रोग नहीं हो सकता। नहीं हो सकता।"

रामानन्द ने सुभागी को देखा। उस के डरे हुए चेहरे पर एक कंपन थी और वह कंपन उस की आँखों में अत्यन्त स्पष्ट हो गयी थी; जैसे कोढ़ की विभीषिका एक भयानक छाया की तरह उस के समूचे स्त्रीत्व को ढकती जा रही हो।

फिर रामानन्द रो पड़ा।

फफक कर बच्चों की तरह रोता रहा। सुभागी उसे शान्ति-धैर्य देती हुई अब अपने अन्तर्मन में रोने लगी। बैलगाड़ी सिकन्दरपुर की ओर बढ़ती जा रही थी। सुभागी अपनी गोद में रामानन्द के सिर को टेके हुए बैठी थी। वह उस के सिर-कंधा, बाँह और वक्षस्थल को मातृवत स्पर्श करती हुई गंभीर, पर बीच-बीच में टूटती हुई वाणी से कह रही थी, "अधीर न हो मेरे ईश्वर ! मुझे देखो, मैं कैसे चुप हूँ—शान्त हूँ। तुम अधीर होओगे तो मैं कैसे जी पाऊँगी। तुम तो पुरुष हो, मेरा भरोसा...स्त्री...मैं......" इसके आगे सुभागी की वाणी एकाएक कँप कर टूट गयी और उस ने जलते हुए अपने निचले ओंठ को दाँतों से भींच लिया और भीतर से बरसते हुए आँसुओं को वह आँखों में टूटने से रोकने लगी।

फागुन के शुक्ल-पक्ष की रात। चौथ की चाँदनी धीरे-धीरे सिमट रही थी। गाँव में हरदीन बाबा की बैठक में लोग फाग गा रहे थे। सामने आम के पेड़ के नीचे एक बहुत बड़ा अलाव जल रहा था और उस के किनारे तमाम लोग घिर कर बैठे थे। बैठक भी गाने और सुनने वालों से खचाखच भरी थी।

गाँव की औरतें सुभागी के घर आयीं और उसे मनाने लगीं कि वह चल कर पुरुषों के उत्तर में फाग गाए। सुभागी इसके लिए बिल्कुल नहीं तैयार थी। उस के सारे गीत, उत्साह, मन का यौवन और आँखों की दूल्हन; जैसे, सब चिन्ता से टूट कर बीमार हो गए थे। रामानन्द की बीमारी अपने भयानक रूप में अब पूर्णतः स्पष्ट हो गयी थी। हाथ पैर में कोढ़ का आक्रमण अत्यन्त निर्मम था और उस के विकृत मुँह पर एक अजीब-सी स्याह छाया उस ने डाल दी थी। शरीर की सारी लावण्यता, पुरुष-जन्य दमक मिट चुकी थी और उस पर विषैले खिसखिसाहट को लिए हुए एक ऐसा रूखापन फैल गया था, जैसे, जवान-नम और अंकुरित मिट्टी पर कहीं से रेत बिछ गयी हो।

रामानन्द के पैताने उदास चिन्तित बैठी हुई सुभागी को गाँव की औरतें और उस की सखियाँ मना रही थीं। वे हर तरह के संतोष और धैर्य दे रही थीं; लेकिन सुभागी का मन कहीं से भी फाग गाने के लिए तैयार न था। अंत में औरतें इस पर उतर आयीं कि वह गाए नहीं, लेकिन वहाँ औरतों के बीच में बैठी रहे, नहीं तो इस वर्ष गाँव की औरतें पुरुषों से फाग-गाने में हार जायेंगी। लेकिन सुभागी इस पर भी न राजी हुई।

फिर रामानन्द मनाता हुआ उसे औरतों के साथ भेजने लगा। वह चाहता था कि सुभागी अपने में हरी-भरी शान्त रहे। हँसे-बोले, गाए, घर-गृहस्थी में उत्साह से भाग ले; क्योंकि वह सोचने लगा था कि वही उस का जीवन है। सुभागी ही उस का सब कुछ है: माँ-बाप, पत्नी, मित्र सब कुछ। और सुभागी अगर उस के साथ इस तरह चौबीस घंटे लगी रहेगी; तो उस पर अकारण मौत की छाया पड़ जायगी उस के जीवन तत्त्व नष्ट हो जायेंगे।

कोढ़ एक तरह का जहर है!

जहर भयानक है!!

रोक संक्रामक है !!!

ये सत्य बातें सदा रामानन्द के मन को दबोचे रहती थीं।

रामानन्द के आग्रह और उस की खुशी के लिए सुभागी औरतों के साथ हरदीन बाबा के घर गयी। बैठक में पुरुष-मंडली डट कर बैठी थी और उनकी छँटी हुई टोली फाग गाने में मस्त थी।

दरवाजे के भीतर, ड्योढ़ी में ही गाँव की औरतें, विशेष कर बहुएँ और दुल्हने बैठी थीं। उन के बीच सुभागी के आते ही उन में अपूर्व उत्साह और प्रेरणा आई। बाहर पुरुषों की टोली झूमर गा रही थी—

'मान जा गोरिया हमार सुन बतिया, यह ले नौलखाहार।'

झूमर समाप्त होते ही स्त्रियों ने उन के उत्तर में फाग गाना आरम्भ किया—

'काहे की होरी हमारी पिया बिन, काहे की होरी हमारी।
चैत मास बन फूलन लागे,
भौंरा लटकि रहें डारी, पिया बिन काहे की होरी हमारी।'

गाती हुई औरतों के स्वर में सुभागी का संगीत-भरा स्वर सब के ऊपर उठ रहा था और ढोलक पर उस की अँगुलियों के ठुमके, फाग के संगीत में मनमोहक गूंज पैदा कर रहे थे।

आधी रात तक दोनों टोलियाँ बारी-बारी गाती रहीं। थोड़ी देर के बाद जैसे, ही सुभागी अपनी जान छुड़ा कर वहाँ से भगी; वैसे ही फाग का स्वर मंद पड़ गया।

हरदीन बाबा की गली को पार कर के सुभागी नरायन के घर के दाएँ मुड़ती हुई, जैसे: अपने घर की ओर बढ़ने लगी, बाएँ से किसी ने एकाएक उस पर पानी फेंक दिया। सुभागी का सारा आँचल सराबोर हो

गया और उस ने देखा, उसके सामने किरपाल लोटे का शेष पानी लिए, हँसता हुआ कह रहा था, "भौजी ! लो यह लोटे का पानी और मुझे भी नहला दो !"

सुभागी का रास्ता रोके किरपाल उसे पानी का लोटा दे रहा था।

सुभागी चुप थी।

सहसा वह अपने आँचल को सँभाल दाएँ से मुड़ कर तेजी से भागने लगी। किरपाल हँस कर उस के पीछे झपटा और उसने बाएँ हाथ से सुभागी की दायीं बाँह पकड़ ली। बाँह भीगी थी और सुभागी को उस पर क्रोध आ गया था उस ने बिना कुछ बोले उसे एक झटका दिया और वह बहुत तेजी से निकल भागी।

रामानन्द सो रहा था। उस के सरहाने, ताक पर दिया जल रहा था। सुभागी कपड़े बदल कर रामानन्द के पास गयी और खड़ी-खड़ी बहुत क्षणों तक वह रामानन्द को देखती रही, फिर थक कर वह अपनी खाट पर जा कर लेट गयी। पूरी खाट बर्फ-सी ठंडी हो रही थी। लिहाफ को अपने शरीर में लपेट कर वह अपने में मिंची हुई सो जाने का प्रयत्न करने लगी।

धीरे-धीरे उसके शरीर में गर्मी आयी। फिर उसे एकाएक दायीं बाँह में दर्द अनुभव हुआ। उसे लगा कि किरपाल ने फिर बहुत जोर से उस की दायीं बाँह को भींच दिया है। शक्ति भरी उस की गोल-गोल लम्बी उँगलियाँ, गद्दीदार-कड़ा हथेली जैसे सुभागी की भरी हुई गोरी बाँह में धँसती जा रही हैं। उस ने बाएँ हाथ से अपनी दायीं बाँह को छुआ, फिर पूरी बाँह को वह अपनी हथेली में भरने लगी; फिर उसे लगा जैसे, वह सो गयी हो। और वह मानो देखने लगी, स्वस्थ-गोरा-हँसमुख,

उभरा हुआ सीना, चौड़ा कंधा, भरी हुई बाँह, चमकता हुआ ललाट और बड़ी-बड़ी रतनारी आँखों वाला रामानन्द, सफेद धोती और कुर्ता पहने, खड़ाऊँ पर चलता हुआ दरवाजे से उस के कमरे में आता है। और भीतर से किवाड़ बन्द कर लेता है! झुका हुआ वह सोती हुई सुभागी को देखता है, मुस्कराता है और फिर दिए को बुझा कर उस के पास सो जाता है और सुभागी उस की बाहों में जकड़ उठती है, फिर भोर हो जाता है। न रामानन्द की बाहें थकती हैं न सुभागी का शरीर।

सहसा सुभागी पसीने से तर हो गयी। उस ने लिहाफ को अपने से दूर हटा दिया और वह अपनी दायीं बाँह में ऐसा दर्द अनुभव करने लगी, जैसे वहाँ की हड्डी टूट गयी हो।

वह बाँह दबाये हुए उठ खड़ी हुई और रामानन्द के पैताने आयी और सिसक कर रो पड़ी। रामानन्द सोते से जग गया।

"क्या हो गया तुम्हारी बाँह में!" रामानन्द ने घबड़ा कर पूछा।

सुभागी सिसकती हुई चुप थी। वह उठ बैठा। सुभागी निश्चेष्ट खड़ी थी। रामानन्द ने फिर पूछा। तीसरी बार पूछा, चौथी बार पूछा फिर भी सुभागी कुछ बोली नहीं। तब वह अपने पलँग से उठने लगा। सुभागी ने बढ़ कर उसे रोक लिया।

"मेरी बाँह में दर्द हो रहा है।" यह कह, वह पलँग पर आ कर बैठ गयी। रामानन्द ने दोनों हाथों से उस की बाँह बाँध ली फिर धीरे-धीरे सुभागी का दर्द कम होने लगा। वह चुप-शान्त हो गयी।

"जाओ अब अपनी खाट पर सो जाओ!" रामानन्द ने स्नेह से कहा।

सुभागी कुछ बोली नहीं। वह धीरे से बच्चों की तरह मचल कर उसी के पलँग पर सो गयी और उस ने रामानन्द को अपनी दायीं बाँह के सहारे पास सुला लिया।

थोड़ी ही देर में सुभागी सो गयी। और रामानन्द जागता रहा। दिया जलता ही रहा। रात का पिछला पहर था। वातावरण की ठंडक बढ़ गयी थी।

उस ने दिये के प्रकाश में सुभागी की बंद आँखों को देखा। पलकें जिस विन्दु पर मुदी थीं उस के किनारे-किनारे आँसू अब तक उभरे थे, जैसे, बहुत देर तक का कोई रोता हुआ शिशु माँ के अंक से लग कर सो गया हो और उस के रुदन की छाप उस की बन्द पलकों पर हो और उस की साँसों में भी।

यह रोग ज़हर है।

ज़हर भयानक है !!

और संक्रामक भी !!!

रामानन्द की साँसों में डर उभरता जा रहा था। वह धीरे-धीरे अपने सोते हुए शिशु से दूर हटने लगा। पूरी लिहाफ़ उस ने उस पर छोड़ दी और वह स्वयं अत्यन्त सावधानी से पलँग को छोड़, उठ खड़ा हुआ।

दबे पाँव, उस ने बंद कमरे की किंवाड़ खोली। आँगन के बरामदे में आया। बरामदे के कोने में दादी ने छोटे से गोल-गड्ढे में आग जिला रक्खी थी।

रामानन्द वहीं बैठ गया और गड्ढे की आग को राख के ऊपर ला कर, उस ने उस में कुछ लकड़ियाँ डाल दीं। थोड़ी देर में लपटों वाली आग धधकने लगी और वह उसे तापता हुआ राम-राम राम-राम कहने लगा। फिर वह सहज मन से रामायण की चौपाइयाँ जपने लगा—

'रहा एक दिन अवधि अधारा,
समुझति मन-दुख भयउ अपारा।

कारण कवन नाथ नहिं आये,
जानि कुटिल प्रभु मोहिं बिसराये।
कपटी-कुटिल मोहिं प्रभु चीन्हा,
तातें नाथ संग नहिं लीन्हा।
जो समुझैं करनी प्रभु मोरी,
नहिं निस्तार कल्प-सत कोरी।

वह एक स्वर से, स्फुट वाणी में इन चौपाइयों को दुहराता रहा और आग की लपटों में सुभागी को अपलक देखता रहा। कुछ क्षणों में उसे लगा; जैसे, सुभागी जानकी हो गयी, जो स्वयं उन लपटों में अपनी अग्नि-परीक्षा दे रही है। रामानन्द का उक्त चौपाइयों का गुनगुनाना धीरे-धीरे बंद हो गया। उन के स्थान पर रामायण की अग्नि-परीक्षा की चौपाइयाँ उस के मन में सहज रूप से घूमने लगीं।

'देखि राम-रुख लछिमन धाए,
प्रगटि कृसानु काठ बहु लाए।
पावक प्रबल देखि वैदेही,
हृदय हरष कछु भय नहिं तेही।
जौं मन-वच-क्रम मम उर माहीं,
तजि रघुबीर आन गति नाहीं।
तौ कृसानु सबकै गति जाना,
मो कहँ होहु अखिंड समाना।'

आग की लपटों में सुभागी खड़ी रही। रामानन्द उसे देखता हुआ सोचता रहा। वह जानकी है; लेकिन मैं तो कोढ़ी हूँ। फिर

वह इस तरह क्यों अपनी अग्नि-परीक्षा दे रही है ! उस ने किया क्या है ! वह जन्म से आज तक पवित्र है; महान है। अपनी माँ के संघर्षों में वह तपायी गयी और अब वह मेरी राख में तप रही है। वह मिट्टी थी, तपती-तपती स्वर्ण हो गयी; उत्तम स्वर्ण हो गयी और अगर वह अब भी सतत् अग्नि में तपती गयी; फिर खरे सोने का क्या होगा ? सुना जाता है कि तब वह पिघल जाता है और धीरे-धीरे राख हो जाता है ! लेकिन राख तो मैं हूँ और वह, वह सुभागी ! मेरा शिशु, मेरी प्रिया, मेरी पत्नी; मेरा सब कुछ,

मेरा अस्तित्व !
मेरी पूजा,
मेरा गन्तव्य !!

संध्या।

और उस रात को होली जलने वाली थी। गाँव भर में उस की तैयारी हो रही थी।

सुभागी जल्दी से भोजन तैयार कर के रामानन्द के शरीर में उपटन लगाने लगी। उपटन लगा चुकने के उपरान्त उस ने उपटन की सारी लीझी इकट्ठा की।

पहर भर रात बीतते-बीतते होली जलायी गयी। होरी-फाग गाते गाते पुरुष गाँव में आये। सुभागी औरतों के झुंड में गाती हुई जलती होली के पास पहुँची। वह धधकती हुई आग के सामने विनम्र खड़ी हो गयी। जिस बर्तन में उपटन की लीझी भरी थी; उसे वह हाथों में लिए हुए थी।

सहसा उस ने बर्तन सहित उपटन की लीझी को आग की लपटों में

डाल दिया और वह प्रार्थना करने लगी—'हे अग्निदेवता ! जिस तरह तू उन के शरीर से छुटी हुई उपटन की मैल जला रहा है, उसी तरह तू उन के शरीर का रोग भी जला।'

दूसरे दिन होली बुझ गयी। गाँव के लड़कों ने बुझी हुई राख की धूल उड़ायी। औरतों की ओर से कीचड़-मिट्टी और गोबर की होली मनायी गयी।

दोपहर के उपरान्त; फाग-होली का संगीत आरम्भ हुआ और उस बीच से फाग की रँग-रेलियाँ होने लगीं।

सुभागी ने गाँव के इन समस्त आयोजनों में से किसी में भी भाग न लिया। दिन का तीसरा पहर हो रहा था, सुभागी आँगन के चबूतरे पर बैठी थी। उस के सामने तुलसी के बिरवे खड़े थे और आँगन से भागती हुई धूप एक किनारे पर पहुँच गयी थी। सुभागी की निश्चेष्ट-सूनी-सूनी दृष्टि उसी धूप पर टिकी थी। उस के सर का आँचल नीचे गिरा हुआ था। गाँव के वातावरण में फाग होरी के गीत और ढोलक की आवाज़ गूँज रही थी।

बाहर दरवाजे से रामानन्द लँगड़ाता हुआ धीरे-धीरे आँगन में आया। सुभागी उसी तरह उदास-मौन बैठी रही। वह चुपके से आगे बढ़ कर सुभागी के गिरे हुए आँचल से उस के मस्तक को ढक दिया।

सुभागी रामानन्द को देखती हुई इस तरह मुस्कराने लगी; जैसे, बिना आँसुओं के कोई रोता हुआ एकाएक मुस्कराने लगा हो।

रामानन्द उस के पास बैठ गया। दोनो चुप थे; लेकिन दोनो की निश्चेष्ट आत्माएँ एक दूसरे से बातें कर रही थीं। जब एक रोती थी, तब दूसरी उसे समझाती थी। जब एक का आँचल अपनी विवशता और निर्धनता पर उदास होता था तब दूसरा उस के सूने आँचल में शिशु का प्यार बन कर सो जाता था।

फिर गाँव के युवकों की एक टोली फाग गाती हुई उस के आँगन में चली आयी।

सुभागी सिहर उठी; जैसे वह डर गयी हो। वह आँगन के चबूतरे से भाग कर बरामदे में खड़ी हो गयी। रामानन्द वहीं बैठा रहा। आँगन में फाग होता रहा। युवकों ने बढ़ कर अबीर-गुलाल और रंग से सुभागी को नहला दिया। सुभागी वहीं बैठी-बैठी सर-से पाँव तक तर हो गयी। रामानन्द प्रसन्नता से देखता रहा। फिर वह उस कमरे में गया, आँगन में आया और अपने हाथों एक बाल्टी गुलाबी रंग घोल कर और भरी हुई बाल्टी में एक लोटा डाल कर उस ने सुभागी को दे दिया।

फाग की धूम में सब मस्त थे। सुभागी ने मस्तक ऊँचा कर के रामानन्द को देखा, फिर रंग से भरी हुई बाल्टी को, और पुनः एकबार रामानन्द को, और उस की आँखों में सहज रूप से आँसू बरस पड़े। लेकिन रामानन्द के मुख की प्रसन्नता और स्नेह की ज्योति, जो उस की आँखों में उभर आयी थी, उस ने सुभागी पर एक स्वप्न डाल दिया। उस ने सराबोर साड़ी के आँचल को सावधानी से अपनी कमर में बाँधा और वह आँगन में फाग गाते हुए पुरुषों को रंग से भिगोने लगी।

संध्या से छः घंटे रात बीतते-बीतते सुभागी को चार बार कपड़े बदलने पड़े। अन्तिम बार उस ने जो साड़ी पहनी, वह कई जगह से फटी थी।

सोते समय जब वह रामानन्द के सिरहाने पीने के लिए पानी रखने गयी; उस समय रामानन्द की दृष्टि उस की फटी हुई साड़ी पर पड़ी।

उस ने विनय के स्वर में कहा, "तुम तो कहती थी कि मुझे पहनने के कपड़े की कमी नहीं है!"

"कहाँ कमी है!" सुभागी हँस दी।

"और वह जो फटी-फटी साड़ी पहने हो!" रामानन्द ने स्नेह से

कहा, आज शुभ-त्योहार है—होली-फाग; आज फटी साड़ी नहीं पहननी चाहिए !"

सुभागी ने अपना सन्दूक खोला। माँ के दी हुई सब साड़ियाँ वह पहन कर फाड़ चुकी थी। धराऊँ कपड़े में से उस ने अपने व्याह की चुनरी निकाली और दूसरे क्षण उसे पहन ली।

रामानन्द पलँग पर लेटा था। सुभागी पलँग की दायीं बाँह पर चुपचाप बैठी हुई अपने पति को देख रही थी।

"अब जाओ अपनी खाट पर सो जाओ !" रामानन्द ने स्नेह से कहा।

सुभागी मौन बैठी रही।

"अब जाओ...सो जाओ।"

सुभागी निश्चेष्ट थी।

उस ने फिर आग्रह किया। सुभागी धीरे से निःशब्द पलँग से नीचे उतर गयी और अपनी खाट पर जा लेटी।

ज्यों-ज्यों वह लिहाफ को अपने शरीर में लपेटती जाती थी, त्यों-त्यों उसे लग रहा था; जैसे, घड़े के घड़े रंग कोई उस पर डालता जा रहा है और वह सराबोर होती जा रही है। महीन चुनरी उस के शरीर पर चिपक कर जैसे, खो गयी हो और वह सचमुच लिहाफ में लिपटी हुई काँपने लगी।

१०

और एक वर्ष बाद ।

चैत के दिन थे । रबी की फसल खेतों से कट कर खलिहान में जमा हो गयी थी । रामानन्द बाहर दरवाजे पर बैठा था । उस का रोग, पीड़ा से आगे चल कर करुणा-स्तर पर पहुँच गया था ।

वह चुप-उदास था । कभी वह बैठता, कभी लेट जाता और कभी धीरे से उठ कर वह टहलने लगता । इन तीनों स्थितियों में, लेकिन उसे कहीं शान्ति न मिलती थी । उसे लगता था कि उस के शरीर का जहर उसकी आँखों में आ गया है और सारा दृश्य-जगत जहर के धुएँ में डूब रहा है । वह अपनी आँखें मूंद लेता और हाथों से सर थाम कर वहीं बैठ जाता । धरती घूम रही है, बहुत तेजी से चक्कर काट रही है । चिन्ता से सर फटा जा रहा है । आँखों में जो दृश्य जगत आता है वह मानों जहरीले धुएँ की एक आँधी है ।

मृत्यु क्यों नहीं आ जाती ?

एकाएक रामानन्द डर से सिहर गया। मृत्यु का आतंक। फिर वह बिना आँसुओं के रोने लगा। आशा-निराशा, मृत्यु-जीवन, और विगत के चित्र उस के सामने से गुजरते जा रहे थे।

उन्हें अकेला छोड़ कर दादी भी चली गयी। मरना किसे चाहिए, मरता कौन है! जैसे, मृत्यु के पास विवेक नहीं। मृत्यु और असमय, मृत्यु और अंधकार। दादी घर की आवाज़ थी; और अब वह आवाज़ खो गयी।

और यह सुभागी!.........न जाने कैसे जीवित है उस के साथ!!! वह विकृत पुरुष और वह स्वस्थ-सरूपा। वह कोढ़ी पति, वह सुहागन। वह राख, वह आग। वह मृत्यु का भयावह पथ, वह जीवन की स्मित रेखा। एक सन्नाटा, एक गीत।

पूरब के सिवान में चार बीघे जमीन गिरवी रख दिए गये थे। पति को निरोग करने के लिए; उसे स्वस्थ देखने के लिए उस की बैल-गाड़ी भी बिक गयी थी।

उन दिनों सुभागी उसे लेकर रामनगर कस्बे में डाक्टर के पास गयी थी। डाक्टर लखनऊ के मशहूर थे और कोढ़ के रोग के विशेषज्ञ थे। रामानन्द को देख कर डाक्टर ने उस से पूछा था; 'तुम गर्मी-सुजाक के कभी मरीज थे न!' रामानन्द की सूनी-उदास दृष्टि सुभागी के मुँह पर पड़ी। और उस ने डाक्टर के सामने ईश्वर की सौगन्ध खा कर कहा था, मुझे यह रोग कभी नहीं हुआ था।'

आज रामानन्द के मस्तिष्क से जैसे, ही अतीत में बोला हुआ यह भयानक झूठ गुजर रहा था; उस ने अपूर्व शक्ति से इस झूठ को पकड़ लिया और व्यथित-स्वर में पुकार उठा—"सुभागी! सुभागी!!"

सुभागी घर में न थी। पिछले तीन दिनों के केवल दो बैलों के गोबर को उस ने अपने घूर के पास इकट्ठा किया था। आधा गोबर घूर में डाल

कर आवे गोबर में खर-खुदुर-पुरकेसा आदि सान कर उससे ऊपलें पाथ रही थी। इस वर्ष उस ने स्वयं अपने हाथों से ऊपलों के भितहुर खड़ा किया था। गोबर से लिपे-पुते भितहुर के पास ही बैठी वह पसीने से तर हो रही थी।

रामानन्द का बुलावा उस के पास पहुँचा। वह उसी तरह गोबर में सनी, अस्तव्यस्त आँचल में अपने को सँभालती हुई रामानन्द के पास दौड़ी हुई आयी।

सुभागी को अपने सामने देखते ही वह हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया और सहसा कहने लगा—"मैं झूठ हूँ सुभागी! मैं झूठ हूँ।"

सुभागी हतप्रभ खड़ी थी। वह कुछ भी न समझ पा रही थी।

रामानन्द स्वीकार कर रहा था, "वह लखनऊ का डाक्टर जो कहता था कि मुझे निश्चित रूप से कभी-न-कभी गर्मी सुजाक हुई होगी; वह सच कहता था। मैं ने तब झूठ बोल दिया था। तब तुम्हारे सामने मेरी हिम्मत न हुई थी, आज मेरी हिम्मत हुई है और आज मैं बता रहा हूँ। मैं जिन दिनों कलकत्ते में चटकल की नौकरी करता था; उन दिनों मुझे यह बीमारी हुई थी। मैं महीने भर तक बुरी तरह बीमार था। फिर एक बंगाली डाक्टर ने मुझे अच्छा किया। और .. और .।"

यह कहते-कहते वह एकाएक चुप हो गया।

"तो इससे क्या! यह भी सही!" सुभागी ने यह कह कर रामानन्द को कंधे से पकड़ कर स्नेह से उसे खाट पर बिठा दिया।

इसके आगे वह कुछ बोली नहीं। वह शून्य में देखने लगी।

"कुछ नहीं, राम-राम करो, बस!" यह कह कर वह मुड़ी। आँगन में गयी और हाथ-पैर धोने लगी।

तीसरे पहर से दिन अधिक बीत गया था। सुभागी अपने छोटे से खलिहान में गेहूँ के कूँटे से अन्न अलग कर रही थी। गाँव के ढोर-

७५५८

ढँगर सामने खेत में चर रहे थे।

किरपाल मेड़ पर खड़ा था। संयोग वश उस की दृष्टि खलिहान में सुभागी पर पड़ी। वह चल पड़ा। खलिहान में आम के पेड़ के नीचे आ कर उस ने साँस भरते हुए कहा, "बड़ी उमस है भौजी!"

सुभागी ने सर उठाया, पर वह कुछ बोली।

दूसरे क्षण वह सुभागी के सामने जा कर बैठ गया, "का है भौजी! ऐसै काम चली।"

सुभागी सोच रही थी कि अब वह क्या करे। वहाँ से उठ कर भागे या उस के मुँह पर थप्पड़ मार दे।

"एक बात सुनो भौजी," किरपाल ने भेद भरे शब्दों में कहा; "तनी हमारी ओर देखो न!"

सुभागी ने आग्नेय दृष्टि से देखा और आवेश में वहाँ से उठ पड़ी।

"ऐसे होई भौजी!" किरपाल ने उठते हुए कहा।

"तुम्हें लाज-शर्म नहीं है बाबू!" सुभागी रुआँसी हो गई।

किरपाल ने इस का कुछ और मतलब लगाया। उस ने सोचा कि उस की आँखों में एक दीनता है; जिसे बड़ी सरलता से मोल लिया जा सकता है।

सुभागी अपने खलिहान से चल कर गाँव के बड़े खलिहान को पार कर रही थी। सामने गेहूँ की बड़ी-बड़ी खरहियाँ लगी थीं। वह तेजी से भाग रही थी। सहसा किरपाल ने पीछे से उसे पकड़ लिया। सुभागी का रक्त खौल गया। उस ने पूरी शक्ति से उस के मुँह पर घूँसा दिया और वह अपने को छुड़ा कर भाग निकली।

किरपाल अपनी नाक सहलाता हुआ वहीं खड़ा रहा, खलिहान में घूमता रहा। फिर उस ने अपनी लाठी सम्हाली और सर नीचा किये

हुए वह ढोर सम्हालने चला गया।

उसी रात के पिछले पहर, सुभागी के खलिहान में आग लगी। केवल एक ही छोटी-सी गेहूँ की खरही थी। उस में पक्के चार बीघे की फसल थी और उसी में आग लगी थी।

चैत की गुलाबी रात थी। खरही जब आधी जल चुकी; तब सुभागी को इस घटना का आभास मिला।

वह सोते-सोते यही स्वप्न में देख कर अपने बिस्तरे से दौड़ी हुई बाहर आयी थी। गुहार मचाती हुई जब वह खलिहान में आयी उस समय तक आग पूरी खरही में फैल चुकी थी। उसे बुझाना असम्भव था। गुहार सुन कर गाँव के जितने लोग दौड़; सभी अपने-अपने खलिहान की चिन्ता करने लगे कि कहीं सुभागी की जलती हुई खरही की कोई चिनगारी उन के खलिहान में न आ जाए।

धू-धू करके खरही जलती रही। सुभागी छाती पीटती हुई चिल्लाती रही। लोग खड़े देखते रहे और आग को सहारा देती हुई पछुआँ हवा धीरे-धीरे बहती रही।

रामानन्द लाठी के सहारे अपनी जलती हुई खरही के पास आया। कातर दृष्टि से वह चारो ओर देखने लगा, फिर जलती हुई खरही की ओर बढ़ने लगा। सुभागी दौड़ कर रामानन्द पर टूट पड़ी और उसे खींचती हुई दूर ले जाने लगी। रामानन्द अपने को छुड़ाता हुआ पागलों की भाँति कह रहा था, "मुझे छोड़ दो सुभागी! छोड़, दो मुझे, मैं अपनी जलती हुई खरही की आग में भस्म हो जाऊँगा।"

"क्यों? क्यों? क्यों?" सुभागी रामानन्द के सीने से अपना सर टकरा रही थी।

"मैं ब्राह्मण हूँ !" रामानन्द ने गर्व से कहा, "मैं इसी आग में जल कर मरूँगा और समूचे सिकन्दरपुर पर ब्रह्म-हत्या लगाऊँगा। दिन-दहाड़े सिकन्दरपुर जलेगा, यहाँ के लोग जलेंगे।"

अजीब भयानक वातावरण हो गया था। समूचा गाँव खलिहान में इकठा था। सुभागी की खरही जल चुकी थी। गेहूँ का एक भी पौदा न बच सका था। गाँव के वायु-मंडल में कुहरे से दबा हुआ, जली हुई खरही का सारा धुँआ ऊपर-ऊपर फैल रहा था और सारे खलिहान में जले हुए अन्न की चिराँयध इस तरह घनीभूत हो कर जमी हुई थी; जैसे गोधूलि में जलती हुई ऐसी चिता का धुआँ जिस में चन्दन और घी की सुगन्धि का भार हो।

सुभागी रामानन्द को समझाती रही और स्वयं छिप कर हफ्तों रोती रही। लगातार तीन दिनो तक उस का चूल्हा न जला।

सुभागी ने एक दिन रामानन्द को निश्चित बता दिया कि उस के अन्न में किस ने आग लगायी थी। उस ने वह पूरी घटना भी बता दी, जिस की प्रतिक्रिया से किरपाल ने वैसा किया था।

पूरी बात सुन कर रामानन्द कुछ बोला नहीं। भीतर ही भीतर किरपाल को ले कर सुलगता रहा।

रात हुई। सब सो गये। रामानन्द धीरे से कमरे के बाहर निकल कर आँगन में आया। आकाश की ओर देखा। आधीरात से वक्त ज्यादा हो रहा था। उस ने अपनी कमर बाँधी। मिट्टी के बर्तन में उसने आग के अंगारों को सम्हाला और घर से बाहर निकल कर किरपाल के खलिहान की ओर बढ़ने लगा।

अपने दरवाजे से वह दस ही क़दम आगे बढ़ा था। दायीं ओर ही

आम का पेड़ था। वह उसी को पकड़े हुए सामने इधर-उधर पूरी स्थति का अन्दाजा लगा रहा था। फिर वह दृढ़ता से आगे बड़ा। एकाएक पीछे से कोई दौड़ कर उस के पैरों पर गिर पड़ा!

वह सुभागी थी। वह अब उस के पैरों पर गिर कर गिड़गिड़ा रही थी, "ऐसा न करो; यह रास्ता ग़लत है।"

घटाटोप अंधेरा था। उस ने आग छीन कर पास के कुएँ में डाल दिया और वह रामानन्द को समझाती; आगे बढ़ाती हुई उसे घर की ओर ले जाने लगी।

बहुत मोटी तह के नीचे राख थी। ऊपर लकड़ी के अंगारे दहक रहे थे। और पास ही सुभागी रामानन्द को समझाती हुई बैठी थी।

एकाएक चिढ़ते हुए रामानन्द के मुँह से निकला, "साले का खलिहान फूँकने से तुम मुझे रोकती हो; रोको। लेकिन मैं उस का घर फूँक कर ही दम लूँगा।

सुभागी चुप थी।

रामानन्द कहता गया, "उस ने हमारा अहार (भोजन) छीना, मैं उस का निवास छीनूँगा।

"कैसे?"

"उस का घर फूँक कर, लंका की तरह उस में आग लगा कर।"

रामानन्द की उदास आँखें दीप्त हो आयीं। मानसिक यातना की चोट उस के पूरे विकृत मुख पर उभरी थी। सुभागी से कुछ बोला न गया। वह फफक कर रोने लगी।

आदमी क्यों कोढ़ी होता है? वह निःशब्द रोती रही और इस के उत्तर में उस की माँ की बतायी हुई एक बात उस में घनीभूत

होती गयी।

आदमी क्यों कोढ़ी होता है?

जब वह किसी की फसल में आग लगाता है, खलिहान फूँकता है और किसी का घर जलाता है; तब वह कोढ़ी होता है।

थोड़ी-सी रात शेष थी। दोनो अब तक बुझते हुए अलाव के पास बैठे थे। दोनो का समझौता हो चुका था।

सुभागी ने हाथ जोड़ कर विनय से पूछा, "जीवन में कभी यह कर्म किया है?"

"क्या?"

"फूँकने या जलाने का!"

"कभी नहीं किया है।"

"कभी नहीं!" सुभागी के स्वर में आश्चर्य मिश्रित सुख का भाव था

"हाँ कभी नहीं; सामने अग्नि माता साक्षी हैं!"

सुभागी ने तुरन्त रामानन्द के जलते हुए मुख पर अपना दायाँ हाथ रख दिया, "ऐसा नहीं बोलते; मुझ पर गुस्सा हो गए क्या?"

सुभागी की आँखें भर आयीं। उस ने सर झुका लिया और उस के मूक आँसू अलाव का राख में टप्-टप् बरसने लगे।

"अब क्यों रो रही हो?" रामानन्द के स्वर में दीनता थी।

सुभागी ने सर उठाया। वह मुस्करा रही थी। आँसुओं से धुली हुई उसकी साफ आँखों में एक ऐसी शान्ति फैली थी, जैसे सुभागी के मन के भूरे-भूरे बादल आज बरस गए हों और उस का पूरा आकाश निरभ्र हो गया हो।

वैसाख बीत रहा था। सुभागी की गृहस्थी अब तक जौ और मटर

के आँटे पर चल रही थी। वह स्वयं तो इसी की रोटियाँ खाती, लेकिन वह रामानन्द से छिपा कर अपने कुछ शेष गहनों को बेंच कर उसे खालिश गेहूँ की रोटियाँ खिलाती थी। लेकिन अब उसे इस का भी आसरा धीरे-धीरे टूट रहा था।

संध्या समय, दो सेर जौ कराई ले कर सुभागी सुखदेई चौधराइन के घर गयी। सुखदेई से उस की बड़ी आत्मीयता थी। प्रायः उसी से सुभागी अपने दुख-दर्द कहा करती थी। उस दिन जैसे, ही वह सुखदेई के सामने हुई, और उस ने कुशल-मंगल पूछा; सुभागी एक दम रो पड़ी। सुखदेई ने असीम समवेदना प्रकट की और उसे लिए हुए आँगन में बैठ गयी।

आँगन के दाएँ बरामदे में चौधराइन का बड़ा लड़का परसाद बैठा हुआ बैल की नाथी बना रहा था। बाएँ बरामदे में चूल्हे की आग के सामने परसाद का छोटा भाई सुमेर पसीने से तर बैठा था। वह बड़ी तत्परता से गर्म सलाख के सहारे एक नयी बाँसुरी बना रहा था!

सुभागी चौधराइन के साथ आँगन में बैठी हुई आधे घन्टे तक अपने दुख-दर्द सुनाती रही। चौधराइन ने उस के दो सेर जौ कराई के बदले उसे एक सेर गेहूँ दिया। और सुभागी घर चली गयी।

रामानन्द को भोजन कराने के बाद सुभागी चौके पर उठी। बड़ी भूख थी उसे। दोपहर की रक्खी हुई मेड़ुए की सूखी रोटी लकड़ी की तरह हो गयी थी। बड़ी कठिनाई से उस ने एक टुकड़ा तोड़ा और दाँतों के नीचे दबाया। भूख की आग; वह रोटी के टुकड़ों से लड़ती हुई उसे खाने लगी। जब उस ने पूरी रोटी खा ली और भर पेट पानी पिया; तब उसे अनायास रुलाई आने लगी। ठीक उसी समय बाहर दरवाजे पर किसी ने दस्तक दी।

सुभागी ने दरवाजा खोलते ही देखा; सुमेर अपने कंधे पर एक बड़ी-

सी गठरी सम्हाले हुए खड़ा था। सुभागी क्षण भर के लिए हतप्रभ थी। सुमेर भीतर प्रवेश करता हुआ कहने लगा, "मैं तुम्हारे लिए यह गेहूँ लाया हूँ, इसे कहीं रख लो!"

दरवाजे की ही ड्योढ़ी में सुमेर ने गेहूँ की गठरी उतार दी। सुभागी अब तक चुप खड़ी थी।

सुमेर ने फिर आग्रह किया, "यह तुम्हारा ही गेहूँ है, इसे रख लो न!"

"लेकिन यह कर्ज मैं कैसे चुकाऊँगी?"

"कर्ज कौन कहता है!" सुमेर ने शक्ति से स्फुट-स्वर में कहा। अधिक क्षणों तक सुभागी चुप खड़ी थी। ड्योढ़ी के अंधकार में सुमेर की फूलती हुई साँसों की आवाज में उसे न जाने क्यों भय लग रहा था। उसे लग रहा था; जैसे, उन साँसों में कभी-कभी कोई चीख उठती थी; और कभी-कभी उस में कोई बेनाम बदबू फैलने लगती थी।

अंधकार में दोनों चुप-निश्चेष्ट खड़े थे। एकाएक सुभागी ने कहा "मैं यह गेहूँ न लूँगी। मुझे जो बदा है मैं उसे निबाह लूँगी!"

"लेकिन यह गेहूँ मैं वापस न ले जाऊँगा, "सुमेर ने कहा, "यह मैं तुम्हारे ही लिए लाया हूँ......मैं तुम्हें .... तुम्हें अपना...... मैं..!"

सुभागी एक ही साँस में भीतर बढ़ गयी। उस ने रामानन्द को जगाया, दवा दी। वह खाट पर बैठा हुआ खाँसता रहा। कुछ देर के बाद सुभागी चिराग लिए हुए ड्योढ़ी में आयी। बढ़ कर उस ने दरवाज़े पर देखा। सुमेर तख्ते पर लेटा था। सुभागी ने उसी क्षण ड्योढ़ी से गेहूँ की गठरी उठायी, धीरे से उसे तख्ते के पास रख दिया। तेज़ी से मुड़ी, और भीतर से फाटक बंद कर लिया।

प्रातःकाल सुभागी घड़ा और डोर लिए हुए भीतर से बाहर निकली

और दरवाजे को पार करती हुई कुएँ की ओर बढ़ने लगी। एकाएक उस की दृष्टि रास्ते पर छिंटे हुए गेहूँ पर पड़ी। वह खड़ी हो गयी। और उस ने मुड़ कर देखा; एक ऐसा रास्ता बनाए हुए गेहूँ छिंटा था; जो उस के दरवाजे से आरम्भ हुआ था और अपनी उसी गति से वह सुखदेई चौधराइन के घर की ओर बढ़ गया था।

चटपट पानी भर कर सुभागी लौटी। झाड़न ले उस ने अपने पूरे दरवाजे पर जाड़ू दे दी।

पहर-भर दिन चढ़ते-चढ़ते सुखराज चौधरी अपने बड़े लड़के परसाद के साथ, गाँव के दो पंचों को लिए हुए सुभागी के दरवाजे पर आये। सुभागी कंडे पर आग लिए हुए लौटी और उस ने एक ही क्षण में मुद्दई, गवाह और पंचों से सुना कि सुभागी ने गेहूँ की चोरी की है।

सुभागी की आशंका चरितार्थ हुई। लेकिन उसे अपने सत्य का सब से बड़ा भरोसा था। उस ने सहज भाव से हाथ में लिए हुए अग्नि की सौगन्ध ली—एक बार नहीं, तीन बार। परन्तु उस के उत्तर में उसे एक ऐसी तीखी फटकार मिली, जिस में एक ही साथ घृणा, चुनौती, प्रतिहिंसा के स्वर मिले थे और उस के भी ऊपर एक नहीं; तीन बदबूदार गालियों की गति थी।

बैसाख बीतते-बीतते ग्राम पंचायत के अदालत—सरपंच ठाकुर नगीना सिंह ने सुभागी पर पच्चीस रुपए का जुर्माना किया और उसे तीन दिन की मुहलत मिली।

दो दिन बीत गए, सुभागी को कुछ न सूझता था। बार-बार उस के सामने केवल यही एक तस्वीर आती थी। उसकी माँ जमुना सामने खड़ी होती थी। उस के दोनों हाथों में जलती हुई आग रहती

थी। आग को सामने बढ़ाती हुई वह साग्रह कहती थी—ले सुभागी! इस आग को ले। जिस रात को तेज आँधी आए, उस रात को आँधी की दिशा देख कर गाँव के एक छोर पर तू चुपके से आग लगा दे। आगे मैं देख लूँगी! मैं आँधी हूँ। हर रात को मैं पुरैना गाँव से उठती हूँ और चारो ओर फैल जाती हूँ—हमेशा बहती रहती हूँ।

इस दृश्य से सुभागी घबड़ा जाती थी। परन्तु उसे कोई रास्ता भी न सूझता था।

तीसरे दिन की सुबह हुई। जिस अमूल्य वस्तु को लिए हुए वह रात भर सोचती रही, वह थी सोने की केवल एक सुहाग की चूड़ी; जिसे जमुना ने ब्याह के मंडप में सुभागी को पहना कर उस का पाँव पूजा था।

......निर्विकल्प। सुभागी चूड़ी को कपड़े में सावधानी से बाँधे हुए लालगंज बाजार की ओर बढ़ी। रास्ते में उसे ठाकुर नगीना सिंह के चचेरे भाई अवधू मिले।

"पालागिन महराजिन!" उन्होंने सुभागी का अभिवादन करते हुये सब हाल चाल पूछा। फिर लालगंज के रास्ते पर अनायास बढ़ते हुए उन्होंने कहना शुरू किया—"महराजिन! जुर्माना-फुरमाना कुछ मत दो। और कहो तो उन्हें आज ही रात को बीस-बीस लाठियाँ पिटवा दूँ। आगे मैं देख भी लूँगा। तुम पर कोई आँच नहीं आएगी। मैं तुम्हारे सूने दरवाजे पर सोया करूँगा। क्षत्री का तो धर्म ही है ब्राह्मण-गऊ की रक्षा!"

सुभागी चुपचाप पीछे-पीछे चलती जा रही थी। वह अवधू की उन बातों को तो सोच ही रही थी; वरन वह उस के आगे एक और भी छोटी-सी बात सोच रही थी कि कहीं अवधू लालगंज बाजार तक उस के साथ न चला जाय, नहीं तो वह निश्चित रूप से गाँजा पीने के लिए रूपये लेगा।

"किस काम से बाजार जा रही हो महराजिन ?" अवधू ने पूछा।

सुभागी सशंकित हो गयी। उस ने झूठ बोलते हुए कहा, "सरकारी अस्पताल में उन के लिए दवा लेने जा रही हूँ !"

"दवा !" अवधू ने मुस्कराते हुए कहा, "क्या महराजिन तुम भी रामानन्द की दवा के पीछे पागल हो ! अरे छोड़ो भी, जो ईश्वर को मंजूर है, वही होता है। विधि की बात को कोई मेट सका है !

सुभागी चुप खड़ी थी। उस की दृष्टि धरती में गड़ी थी; जैसे उस में समा जाने के लिए वह कोई उपाय ढूढ़ रही हो।

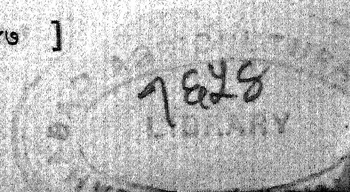
"अठारह-बीस साल की उमर है तुम्हारी," अवधू ने रुकते हुए कहा, "पहाड़ जैसी सारी उमर पड़ी है; इस को पार करने की भी तो चिन्ता करो।"

सुभागी काँप गयी। लेकिन उस कंपन में भय की अपेक्षा एक ऐसे क्रोध की ताप थी जो प्रतिशोध के रूप में नहीं आती; बल्कि यातना के बीच से आत्मा की गहराई लिए आती है।

सुभागी कुछ बोली नहीं। उस ने धीरे से सर उठाया और उस दृष्टि से उस ने अवधू को देखा; जिस में वेदना की अमित आग थी।

वह अकेली बाजार पहुँची। महाजन के यहाँ सोहाग की वह सोने की चूड़ी केवल पैंतिस रुपए में बिकी। वह उल्टे पाँव लौटी। अदालत सरपंच के यहाँ गयी। संयोग वश उस समय ग्राम पंचायत बैठी थी। सरपंच के सामने सुभागी एकाएक आ खड़ी हुई और गर्व से उस ने एक ही दृष्टि से समूची पंचायत को देखा।

पंचायत में शांति फैल गयी थी। सुभागी ने आकाश के शून्य में आँचल फैला कर अजीब करुणा मिश्रित विनय से कहा, "हे ईश्वर !



इस का न्याय तू कर !"

और उसी क्षण उस ने आँचल के छोर से दस-दस के दो नोट और एक पांच के नोट को खोल कर, तीनों अलग-अलग किया और कागज के बेकार टुकड़ों की तरह उस ने सरपंच के सामने फेंक दिया। पूरी पंचायत को उस ने फिर सगर्व देखा और वह चुपचाप लौट पड़ी।

जेठ के दिन थे। दिन भर लू चली थी और शाम से ही एकाएक हवा रुक जाने के कारण बेहद उमस थी। चार घंटे रात बीत चुकी थी। आँगन में रामानन्द और सुभागी दोनो अपनी-अपनी खाट पर बैठे थे। एकाएक वातावरण में आँधी आने की आवाज़ उभरी।

सुभागी दोनों खाटों को बरामदे में कर भी न सकी थी कि आँधी आ गयी। बहुत तेज़ आँधी थी। जिस गति से यह आयी थी; उसी गति से पक्के दो घंटे तक चलती रही।

सुभागी खाट पर लेटी थी और उस के सामने माँ-जमुना अमूर्त रूप से खड़ी थी और वह स्पष्ट शब्दों में मानो कह रही थी, ले बेटी! यह आग है! मैं आँधी हूँ न! देखा, मैं इस गाँव में आ गयी। अब तू चुपके से पश्चिमी किनारे से इस गाँव में आग लगा दे, फिर मैं अपना सारा कर्त्तव्य पूरा कर लूँगी।......चल न बेटी! डरती क्यों है? यह सब झूठ है बेटी! सत्य केवल तू है; तेरी भूख है, तेरा आँसू है, तेरी वेदना और यातना है। गाँव के ये सब लोग भी सच हैं। क्यों पाप से डरती है? यह भी कोई चीज़ है? ईश्वर से भय खाती है? कि उन के बीच तू है। मैं भी तब सच थी जब तक मैं जमुना-रूप में थी। लेकिन उस सच को, उस साधना को, जिसमें आशा और स्वप्न के प्राण थे; झूठ और अधर्म ने बरबस पीस डाला। तब से मैं मृत्यु की एक ऐसी आँधी बन कर दिन रात बहती रहती हूँ; जिस के आँचल में अपने सत्य को जीवित रखने के लिए माँ का अपार दूध है। बेटी! तू

मेरा सत्य है। मैं तेरी छाया हूँ, तू आग है, मैं आँधी हूँ।

सुभागी न जाने कब सो गयी। आँधी भी न जाने कब रुकी। लेकिन इतना अवश्य हुआ कि वह सोती हुई तब जगी; जब उसे रामानन्द ने जगाया।

दिन ऊपर चढ़ आया था। दरवाजे पर झाड़ू दे कर, कूड़े-करकट को खाँची में भरे हुए वह अपने घूर पर गयी।

सुभागी को वहाँ; जैसे, मौत ने छू दिया। उस ने देखा, उस का पूरा भितहुर तोड़ कर गिरा दिया गया था और सब ऊपलें-कंडे, चोरों ने लूट लिये थे।

वहीं सर थाम कर वह रोने लगी। गाँव की तमाम औरतें जुट आयीं। कुछ तो बातों में लग गयीं; कुछ सुभागी के प्रति समवेदना प्रकट करने लगीं और सब से अधिक, वे बेनाम चोर को टूट-श्राप और गालियाँ देने लगीं।

सुभागी जब घर लौटी, उस ने देखा रामानन्द उस घटना को मुकदमा का रूप देने के लिए घर से बाहर चल पड़ा था। सुभागी ने रामानन्द के लिखे हुए प्रार्थना पत्र को पढ़ा। उन नामों को भी पढ़ा और तत्काल भविष्य में आने वाले उन सब परिणामों को भी उस ने सोचा, फिर उस का माथा घूम गया। उस ने रामानन्द को जाने न दिया। उसे घर लौटा लिया। यद्यपि वह उस रात को बच्चों की तरह रामानन्द के अंक में अपना मुँह छिपा कर रोती रही और विवश रामानन्द को भी रुलाती रही।



११

आषाढ़ का पहला पानी उसी दिन बरसा था। दोपहर को, जैसे ही बूँदी टूटी, सुभागी हाथ में कुदार लिए हुए पूर्वी सिवान में अपने दो खेतों के मेड़ सम्हालने निकली। टूटे हुए मेड़ों को सम्हालने में उसे पक्के दो घंटे लग गए और इस बीच में फिर पानी बरसने लगा। सुभागी सिवान से दौड़ती हुई, जैसे गाँव के बाग में पहुँची, पानी बहुत तेज़ हो गया। वह कुएँ के पास वाले बरगद के पेड़ की छाया में खड़ी हो गयी। बरसते हुए पानी को देखती हुई वह सोचने लगी, तीन ही बीघे धान के खेत सही, उन्हें बोना तो होगा ही। लेकिन बीज कहाँ से आएगा? खेत कैसे बोये जाएँगे? कौन बोएगा? कैसे होगा सब?

मैं मर क्यों नहीं जाती? किस लिए मैं जीती हूँ? कौन जिला रहा है मुझे? माँ तो मर गयी। मैं न जाने कब मरूँगी। माँ कहती थी मैं अच्छे लग्न में पैदा हुई हूँ। मेरे ग्रह अच्छे हैं। बृहस्पति शुक्र और

मंगल का शुभ योग है। लेकिन कहाँ हैं वे शुभ ग्रह? कहाँ है उन की मंगल दृष्टि? मेरा नक्षत्र तो सिकन्दरपुर है।

बरगद के पत्तों, तनों और डालियों से वर्षा की बूँदें झरने लगी थीं। सुभागी के पास वही केवल एक साड़ी थी; जिस में उस का तन ढका था; इसलिए वह उसे भीगने से बचाती हुई बरगद के पेड़ से सटी जा रही थी।

तेज़ वर्षा के कारण छन-छन कर बरगद भी बरस रहा था और उस के आश्रय में खड़ी हुई सुभागी की आँखें भी बरस रही थीं।

कौन है, किस के सामने मैं बार-बार रोती हूँ, सुभागी सोच रही थी। कोई भी तो नहीं है। फिर मैं क्यों रोती हूँ? क्या होगा इस से!

सुभागी रोना नहीं चाहती थी; फिर भी वह रोती जा रही थी। यद्यपि उस के रुदन में शब्द नहीं थे, वाणी नहीं थी; लेकिन उस में एक अजीब तीव्रता थी; जो घृणा में होती है।

"पालागन महराजिन!......ओ हो, यहाँ भीग रही हो तुम!"

अवधू सिंह को उस ने कातर दृष्टि से देखा और वह तेजी से वर्षा में चल पड़ी। अवधू के हाथ में छाता था। उस ने दौड़ कर सुभागी का साथ ले लिया, "महराजिन! मैं तुम्हें आज तीन दिनों से ढूढ़ रहा हूँ!"

सुभागी ने कुछ न सुना। वह अवधू के छाते से दूर भागती गाँव की ओर बढ़ रही थी। फिर भी अवधू उस का पीछा कर रहा था। सुभागी को यह दृश्य बहुत ही भयानक लगा। उस ने अपेक्षाकृत यही उचित समझा कि वह फिर सामने, आम के पेड़ की छाया में रुक जाय और अवधू की बातें सुन ले।

सुभागी के ऊपर छाता ताने हुए अवधू खड़ा हो गया। कुछ देर चुपचाप उसे देखता रहा, फिर कहने लगा, "मैं परसों रात को कलकत्ता

जा रहा हूँ। वहाँ से सेठ की चिट्ठी आयी है। दरवानी का काम है, साठ रुपए महीने पगार और बाड़ी मुफ्त में !?'

इतना कह कर वह सुभागी को देखने लगा। उस ने ज़रा दूर हट कर भरी पलकों से अवधू को देखा, जैसे उस की पलकों के उमड़ते हुए आँसू चीख कर कह रहे हों; तो मुझसे क्या ?

कुछ क्षणों बाद अवधू ने भेद-भरे स्वर में कहा, "सुभागी !....."

लेकिन इसके आगे वह तीन बार प्रयत्न कर के कुछ नहीं कह सका। अंत में उस ने पेड़ की ओर मुख कर के कहा, "मेरे साथ तुम कलकत्ता क्यों नहीं भाग चलती ? मैं कमाऊँगा और मेरे साथ तुम ऐश करोगी !"

सुभागी के हाथ से एकाएक उसकी कुदाल नीचे गिर गयी। अवधू ने अपना दायाँ हाथ उस के कंधे पर रख दिया। सुभागी जैसे, वहीं खड़ी-खड़ी मर गयी और वह सुनती जा रही थी, "चलो आज ही रात को भाग चलें। क्या उस कोढ़ी के पीछे अपनी फूल जैसी ज़िन्दगी खराब कर रही हो। छोड़ो इस गाँव को और उसे भी छोड़ो !"

"किसे ?" सुभागी एकाएक, जैसे जी पड़ी। और उसी क्षण उस ने हाथ में अपनी कुदाल भी उठा ली। अवधू का हाथ उस के कंधे से नीचे गिर गया और सुभागी ने उस कंधे पर अपनी कुदाल रख ली। उस ने आग्नेय दृष्टि से देखा, और बहुत तेजी से वह गाँव में चली गयी।

वह आधी भीग चुकी थी, लेकिन उसे कुछ भी न पता था। उस का मन, मस्तिष्क, निष्ठा-वृत्ति और साधना के पक्ष—सब के सब, जैसे, घायल हो जाने वाले थे। सुभागी दौड़ी हुई रामानन्द की खाट पर गयी और उस के पैरों से लिपट कर रोने लगी। खूब रोयी, और जब उस को अनुभव हुआ कि रामानन्द भी रो रहा है, तब वह चुप हो

गयी और रामानन्द को सम्हालने लगी। फिर उसे यह भी पता लगा कि उस की साड़ी भीगी हुई है।

रामानन्द की धोती पहन कर सुभागी ने अपनी साड़ी को सूखने के लिए फैला दिया। वर्षा की बूँदें टूट चुकी थीं। साँझ हो आयी थी। आँगन में उदासी थी और रामानन्द-सुभागी चुपचाप बैठे थे; जैसे, उन दोनों में एक मूक वार्तालाप चल रहा था। जैसे, वे दोनो चुपचाप कोई बहुत बड़ा फैसला कर रहे थे। सभी आयी हुई और आती हुई घटनाओं को सुभागी रामानन्द से कहती रहती थी; क्योंकि उस ने कभी भी रामानन्द से अलग हो कर अपने को नहीं सोचा था। इसीलिए रामानन्द ने भी सुभागी से अपने को अलग कर के कभी नहीं देखा था। लेकिन उस क्षण जैसे, वे दोनों अपने को निरपेक्ष रूप में सोच रहे थे और स्वयं अपने-अपने को तौलते हुए वे किसी एक ऐसे फैसले पर पहुँच जाना चाहते थे, जो सत्य हो; शुभ हो और जहाँ उन की स्वाभाविक गति हो।

"बोलो अब क्या सोचते हो ?" सुभागी ने उदासी भंग की।

"मैं क्या, तुम्ही बोलो!" रामानन्द के स्वर में असीम वेदना थी।

"तो मैं ही क्या बोलूँ," सुभागी ने कहा, और कुछ क्षणों तक वह अपलक रामानन्द को देखती रही।

"लेकिन इस तरह चिन्ता क्यों ?" सुभागी ने कातर स्वर से पूछा।

"इन सब बातों के अतिरिक्त एक बात और भी खड़ी हुई है," रामानन्द ने चिन्ता से कहा, "जब तुम खेत के मेड़ सम्हालने गयी थी; उस समय दातादीन बाबा मेरे पास आए थे और उन्हों ने बताया है कि उतर के सिवान में नागबाबा के थान वाले दो बीघे खेत; जिसे पिछले दो वर्षों से अजगू को गल्ला दिया गया था; अब वह कह

रहा है कि वे खेत उसी के हो गए हैं; उन पर अब हमारा कोई अधिकार नहीं।'

"अलगू की यह हिम्मत !" सुभागी इस नयी पीड़ा के सामने सब कुछ भूल गयी।

धोती बदल कर वह अलगू के घर भागी गयी। अलगू ने उस से स्पष्ट कह दिया कि पटवारी के कागज में वे दोनों खेत उस के खुदकाश्त हो गए हैं। उसे अब उस के हक़ से कोई नहीं छीन सकता।

एक सप्ताह तक सुभागी पटवारी, अदालत-सरपंच और पुराने जमींदार के पास दौड़ी; लेकिन अलगू न माना और उस ने बरबस खेतों को बो लिया।

सुभागी को यह अन्याय असह्य था। उस ने तै कर लिया कि वह बाप-दादों के उन खेतों को अपने हक़ से न जाने देगी; चाहे उस के लिए शेष पाँच बीघे खेत में से दो बीघे खेत गिरवी क्यों न रख दिए जाँय।

उसे विवशतः यही करना भी पड़ा। वह स्वयं अपने तीन बीघे धान के खेत को भी न बो सकी, बल्कि उसे परम विश्वासी मिसरी गोसाईं को सब बटाई पर देना पड़ा।

इस के उपरान्त सुभागी तहसील में दावा दाखिल करने के लिए मिसरी गोसाईं के साथ रामनगर गयी।

जिस समय सुभागी व्यक्तिगत रूप से दावा दाखिल करने के लिए तहसीलदार साहब के इजलास में पहुँची; तहसीलदार कामता प्रसाद को देखते ही वह चौंक गयी और वह उन्हें कुछ-कुछ पहचानने लगी। उस की पूर्व स्मृति बिल्कुल ताजी हो आयी। बाँसी, पुरैना, वंतीजीजी,

नन्नू, पारो बुआ, जैसे सब मूर्तिवत उस के सामने आते गए। और वह-आत्म-विस्मृत-सी हो गयी।

वह तहसील के बाहर बैठ गयी। चार बजे। कामता प्रसाद जी इजलास से उठ कर अपनी हवेली की ओर गए और सुभागी आत्म-विश्वास और मानसिक प्रेरणा से खिंची हुई उन के पीछे-पीछे चली।

हवेली में प्रवेश करते-करते उन्हों ने घूम कर सुभागी को देखा और वे वहीं खड़े हो गए। सुभागी दौड़ कर उन के पाँव से लिपट गयी और उस ने अपने आँसुओं से समय के उस लम्बे व्यवधान को भर दिया जो बाँसी की वंती जीजी से आज तक की सुभागी के बीच में आ गया था।

घर में जा कर सुभागी ने पारो बुआ को पहचाना और गले मिल कर खूब रोयी। फिर सुभागी को लगा; जैसे वह एक नई दुनियाँ में पहुँच गयी; जहाँ स्नेह है, स्मृति है और जीने की अतुल आशा है।

कामता प्रसाद ने जमुना को याद किया। सुभागी आँसुओं के बीच स्वर्गीय वंती जीजी को याद करती रही और उस याद में नन्नू की स्मृति उसे इतनी तीव्र समवेदना से बाँधने लगी; जैसे मन की किसी घनी-भूत पीड़ा के बीच से कोई चला जा रहा हो, चला जा रहा हो।

तब की सुग्गी आज की सुभागी बन गयी है। तब का नन्नू आज आनन्द बन कर लखनऊ में पढ़ता है।

तहसीलदार साहब ने बाँसी में खिंचे हुए परिवार के उस ग्रुप फोटो को निकाला और सब ने देखा। वहाँ सब, जैसे जीवित खड़े थे—वही स्नेहमयी वंती जीजी; तहसीलदार साहब, पारो बुआ, साढ़े सात वर्ष की सुग्गी, आठ वर्ष का आनन्द और जमुना। वही आँगन; वही तुलसी के बिरवे; जो संयोग वश चित्र के पृष्ठ भूमि में आ गए थे; सभागी सब को देख रही थी, पहचान रही थीं, और अपने को बिल्कुल

भूल गयी थी।

मिसरी गोसाईं के साथ सुभागी जब सिकन्दरपुर लौटी; उस समय अंधेरा हो गया था। रामानन्द दरवाजे पर बैठा हुआ सुभागी की प्रतीक्षा कर रहा था।

सुभागी जब रामानन्द के सामने आयी; उसे लगा, मानो रामानन्द कोढ़ी नही है। वह बिल्कुल स्वस्थ हो गया है। उस के मुख पर अमित ज्योति है। सुभागी की प्रसन्नता और उस के मुख की मंगल-कांति को देख कर; रामानन्द ने भी अनुभव किया कि वह पहले का रामानन्द हो गया।

आधी रात तक सुभागी का दीपक जलता रहा। दोनों ने भरपेट खाना खाया था और वर्षों के बाद दोनों के मुख पर हँसी फूटी थी। सुभागी समूचे शुभ-संयोग को जिस गद्गद वाणी से सुना रही थी; उस के क्रोड़ में एक ओर जीवन के मंगल भविष्य की सच्ची आशा और निष्ठा थी और दूसरी ओर उस में सिकन्दरपुर के प्रति तीव्र घृणा थी; जहाँ रह कर दम लेना तक उस की दृष्टि में पाप था।

सुभागी ने फैसला कर लिया कि वह सिकन्दरपुर को छोड़ कर रामनगर चली जायगी। वहाँ से वह अपने खेत का मुकदमा जीतेगी। वहाँ अस्पताल है, डाक्टर है; रामानन्द की वहाँ दवा होगी और वह अच्छा हो जायगा।

दूसरे ही दिन सब वस्तुओं का उचित प्रबन्ध कर के सुभागी ने अपनी घर, गृहस्थी, खेत, खलिहान सब मिसरी गोसाईं के दायित्व पर सौंप दिया।

भोर से भी तड़के का समय था। सुभागी और रामानन्द किराए की बैलगाड़ी पर बैठे और सोते हुए सिकन्दरपुर गाँव को छोड़ कर, वे चुपचाप रामनगर की डगर पर चल पड़े।

१२

रामनगर में सुभागी को जो कुछ मिला, उस में जीवन की साध थी। जो कुछ पीछे सिकन्दरपुर में छूट गया, उस में विरक्ति थी, मृत्यु की लालसा थी। अतएव जो कुछ भी पिछला था, जितनी भी विगत की अनुभूतियाँ थीं; उन में अजीब-सी पराजय थी; इसलिए सुभागी यहाँ आ कर सब को भूल जाने का प्रयत्न करती थी।

संयोग-वश उसे अब जीने के लिए, एक नए-बिल्कुल नए अप्रत्याशित ढङ्ग का जीवन मिला। यद्यपि उस जीवन की भी आत्मा वही संघर्ष थी, साधना थी, लेकिन अब इस में एक आशा थी; जीवन जीने के लिए है, इस की एक अज्ञात प्रेरणा है; जिस ने सुभागी को फिर से जीने के लिए आकर्षित कर लिया।

रामनगर में कामता प्रसाद के आश्रय में सुभागी का पूरा जीवन नया हो गया था। जीवन की एक नयी भूमिका हो गयी थी; जिस का शत-प्रतिशत सिकन्दरपुर के जीवन से विरोध था।

सड़क से पश्चिम, दायीं ओर, उसे एक मुफ्त में दो कमरों का कच्चा घर मिला। सरकारी अस्पताल से रामानन्द की मुफ्त में दवा होने लगी।

और सुभागी ?

वह अपने खेत के हक़ का मुक़दमा जीत गयी और उन खेतों को भी उस ने गोंसाईं को सौंप दिया। और अपनी जीवन-चर्या में उस ने अपने नए जीवन की गति से विगत के जीवन को चुनौती दे दी। वह हवेली में रसोई बनाने लगी, लेकिन वह अपना भोजन अपने घर में बनाती थी; और रामानन्द के साथ खाती थी। प्रतिदिन उस के जीवन के जितने घंटे तहसीलदार साहब की हवेली में बीतते थे; वह सब उस नए जीवन की रक्षा के लिए था; जिसकी आत्मा रामानन्द था। और जो शेष क्षण उस के, रामानन्द के साथ, अपने घर में बीतते थे; वही उस की तपस्या थी; जिस के आधार पर उसे जीने का आत्मिक मोह था।

सुभागी किसी न किसी भाँति आनन्द को याद किया करती थी। एक दिन पारो बुआ ने अपने बक्स से, उसी वर्ष की खिंचाई हुई आनन्द की नयी फोटू निकाली और उसे सुभागी को दिखाया। वह देखती ही रह गयी। कितने बड़े हो गए आनन्द बाबू और कितने गम्भीर। तेज मुख पर वंती जीजी के नाक और आँख की कितनी प्यारी छाप है।

चित्र लिए हुए सुभागी पारो बुआ के कमरे से हवेली के पिछवाड़े चली गयी और पपीते के पेड़ों के नीचे खड़ी-खड़ी आनन्द के चित्र को देखने लगी।

निर्जीव चित्र चुप था, सुभागी भी उस के साथ उसी तरह चुप थी।

लेकिन उस ने अपनी दृष्टि को चित्र की आँख की गंभीर चितवन से मिला दिया और जैसे, वह भी निर्जीव हो गयी। चित्र में आनन्द के साथ वह भी बैठ गयी।

दोनो के बीच लकड़ी का घोड़ा था। आनन्द के हाथ में चाबुक और सुभागी के हाथ में गुड़िया थी, जो अभी तक कुमारी थी। सुभागी मचल रही थी कि वह अपनी गुड़िया को आनन्द के घोड़े पर बिठा दे। आनन्द चुप था। सुभागी ने गुड़िया को उस के घोड़े पर बिठा दिया। आनन्द फिर भी चुप था।

फिर सुभागी ने पूछा - 'अब यह क्यों!'

'अब हम लोग बच्चे थोड़े हैं,' आनन्द ने जैसे गंभीरता से उत्तर दिया, 'हम लोगों का वह बचपना, वे अनोखे खेल सब पीछे छुट गए। मैं अब एम० ए० पास हूँ और अब तुम श्रीमती सुभागवती हो। अब तो हमारे सब खेल छुट गए।

'लेकिन आनन्द! तुम्हारे हाथ में चाबुक जो है, तुम आज मुझे एक बार फिर इसी चाबुक से मेरे मुँह पर मारो और डाँट कर मुझसे पूछो— तू अब तक क्यों जिन्दा है सुभागी!'

पीछे से एकाएक पारो बुआ की हँसी उभरी। सुभागी आसमान से धरती पर लौट आयी। लजायी हुई पास खड़ी हो गयी।

"अच्छा, तुम इस चित्र को अपने पास रख लो ना!" बुआ ने कहा।

"नहीं, बुआ जी! आप ही अपने बक्स में रखिए, मुझ से कहीं खो न जाय!"

फिर सुभागी बुआ के साथ भीतर चली गयी।

पिछले दो पत्रों में क्रमशः बुआ ने सुभागी का परिचय, फिर उस का थोड़ा-सा विवरण आनन्द को दिया था। दूसरे पत्र का उत्तर आनन्द

ने दिया और उस ने बुआ को लिखा था कि उसे सुभागी की याद आ गयी, उसीको वह बाँसी में सुग्गी के नाम से पुकारता था।

तीसरे पत्र में सुभागी ने आनन्द को अपना नमस्ते भेजा और शीघ्र ही दर्शन पाने की कामना प्रकट की। परन्तु इस का आनन्द ने कुछ न उत्तर दिया। इस के बाद सुभागी ने बुआ से दो पत्र-एक के बाद एक, भिजवाए और दिन-रात वह उन के आने की बाट जोहने लगी।

अक्टूबर का पहला सप्ताह था। पिछले दिनो कामता प्रसाद की दूसरी पत्नी प्रभा, नन्हा और गीता के साथ बरेली, अपने मायके चली गयीं थीं। वहाँ उन के भतीजे की शादी थी।

उन्हीं दिनों तहसीलदार साहब ने बुआ, रत्ती और सुभागी के लिए जाड़े के कपड़े खरीदे थे। सुभागी फूली न समायी थी। पेटीकोट के साथ उसे जो साड़ी मिली थी; वह सब से अच्छी थी। उसी से मेल खाता हुआ उस का ब्लाउज था। दरवाजे ही पर दर्जी ने उसे सिला था।

इतवार का दिन था। दोपहर का भोजन पवित्रता से थाली में सजा कर सुभागी उसे कामता प्रसाद के कमरे में ले गयी और उसे उन के सामने मेज़ पर उस ने रख दिया।

उस के पूरे बदन पर केवल एक पतली-सी साड़ी थी और कुछ न था। वह इसी तरह रोज खाना बनाती थी। थाली रख कर सुभागी कमरे से बाहर जाने लगी। कामता प्रसाद ने उसे बुलाया। वह और विनय से सामने खड़ी हो गयी। उन्हों ने एक ही दृष्टि में सुभागी को नख से शिख तक देखा, जैसे उन्होंने अभी तक उसे देखा ही न था।

सुभागी सर झुकाए खड़ी थी और उन की दृष्टि उस के स्वस्थ वक्षस्थल पर गड़ी थी। उसे इस तरह बातों में खड़ी रखने के लिए

वे अनेक तरह की बातें करने लगे—"सुभागी तुझे किसी तरह की तकलीफ तो नहीं है! रामानन्द अच्छे से है न! डाक्टर चड्ढा कहते थे कि उस की हालत काफी ठीक है। तू तो मेरी लड़की की तरह है, फिर किसी बात का संकोच क्या! मुझे तेरे पीछे आनन्द की माँ और तेरी माँ जमुना की याद आती है। मेरे रहते तू किसी बात की चिन्ता न करना।.....रामनगर वालों में से तो अब कोई तुझे कुछ नहीं कहता! और अब सिकन्दरपुर वालों की क्या हिम्मत! कोई बात होगी तो मुझ से निःसंकोच कहना; मैं तेनुआँ के थानेदार से सब ठीक करा दूँगा......संयोग को क्या कहें, तू यहीं पास के गाँव में मुसीबतों में फँसी रही और मुझे कुछ भी न पता चला! ख़ैर......।"

सुभागी कामता प्रसाद की सारी बातों के उत्तर में आर्द्र नयन, सर झुकाए इतना ही बीच-बीच में कहती जाती थी—"बाबू जी, सब आपकी कृपा... सब ठीक है बाबू जी!...हाँ बाबू जी, नहीं बाबू जी...!"

और शेष वह चुपचाप धरती ही देख रही थी। और कामता प्रसाद की वाणी भोजन के बीच से बातें कर रही थी और उन की पैनी दृष्टि अपनी गंभीरता में सुभागी के शरीर पर बहुत तीव्रता से त्रिभुजाकार घूम रही थी; जैसे उस दृष्टि से कुछ देखा नहीं जा रहा था, बल्कि उस दृष्टि में, जैसे एक हाथ था, जो सुभागी के वक्षस्थल के महीन कपड़े को दूर हटा कर उस के स्वस्थ-वर्तुल विन्दुओं को स्पर्श कर रहा था। और जैसे उस स्पर्श करते हुए हाथ में एक जिह्वा भी थी; जो सुभागी के सुन्दर शरीर का स्वाद भी ले रही थी। और वह स्पर्श, वह स्वाद भोजन करते हुए कामता प्रसाद की आँखों में साफ उतरता जा रहा था।

सुभागी मुड़ी । भागी । आँगन में गयी और कपड़े बदल कर अपने घर चली गयी ।

शाम को सुभागी अपने घर से बहुत देर को लौटी । हवेली में सब लोग उस का इन्तजार कर रहे थे । उस ने आते ही आनन्द के पत्र के बारे में बुआ से पूछा, लेकिन उस दिन की भी डाक में उस का कोई पत्र न आया था ।

उस दिन, रात का भोजन सुभागी ने बहुत अलस मन से बनाया । थोड़ा तो उस के सर में दर्द था और उस का मन भीतर ही भीतर न जाने क्यों अकुला रहा था ।

भोजन तैयार कर के उस ने आज सब से पहले पारो बुआ को साग्रह खिलाया । फिर उस ने अपनी पूरी बाँह की कमीज पहनी, तहसीलदार साहब के लिए थाली लगायी और उसे लिए हुए वह उन के कमरे में गयी ।

कामता प्रसाद ने सुभागी को अर्थपूर्ण दृष्टि से देखा और वे मुस्करा पड़े, "अरे ! आज तू ने कमीज़ पहन कर खाना बनाया है !"

सुभागी कुछ बोली नहीं, उस ने धीरे से सर हिला दिया ।

"खैर कोई बात नहीं," कामता प्रसाद ने स्नेह से कहा, "लेकिन तू ने यह क्या भद्दी-सी कमीज़ पहनी है। तेरे लिए तो मैं ने जो ब्लाउज सिलवाया है; उसे क्यों नहीं पहनती !" जैसी तू है वैसा-ही कपड़ा तुझे पहनना चाहिए !"

सुभागी चुप थी ।

"कल से उसे ही पहनना, हाँ !"

उसी क्षण वह चुपचाप कमरे से बाहर निकल गयी ।

तहसीलदार साहब का सिलवाया हुआ ब्लाउज सुभागी को बिल्कुल नहीं पसन्द था । उसे पहनना वह अपनी बे आबरूही समझती थी ।

उस से बहुत अच्छा तो वह अपनी साड़ी का आँचल समझती थी। उस से शरीर तो पूरा ढक जाता था। लेकिन उस ब्लाउज से तो नंगा ही भला। पूरा शरीर कस जाता था, जो अंग ढकने को होते थे, उस ब्लाउज से उस में और बेपर्दगी आ जाती थी। पूरी बाँहें खुली-खुली; पूरे ढंग से पेट भी नहीं ढक पाता; पहनते ही दम घुटने लगता था; दहिजरा, वह भी कोई पहनावा था। सुभागी को उस से सहज चिढ़ थी।

कामता प्रसाद सुभागी को दो दिनों तक टोकते रहे, लेकिन उस ने अपना पहनावा नहीं बदला। तीसरे दिन दोपहर को सुभागी ने बताया, "बाबू जी ! मुझे वह कपड़ा बहुत कसा लगता है !"

"इसलिए वह मेरा सिलाया हुआ ब्लाउज तुझे पसन्द नहीं," कामता प्रसाद ने गम्भीरता से कहा, "और मुझे तुम्हारी यह भोड़ी कमीज पसन्द नहीं। तू मेरी हैसियत नहीं समझती ! तुझे कोई ऐसा देखेगा तो मुझे क्या कहेगा !"

जो थोड़ा-सा सर-दर्द सुभागी को पिछले दिन हुआ था, वह दूसरे दिन बहुत बढ़ गया। पूरे दिन वह सर-दर्द से हैरान थी। फिर भी वह कराहती हुई चौके में रसोई बनाने बैठी। लेकिन पारो बुआ ने उसे बनाने न दिया। और अगले दो दिनों तक सुभागी की दशा वैसी ही रही।

दर्द से कराहती हुई, वह सर थामे, दीवार के सहारे बैठी थी। पारो बुआ खाना तैयार कर रही थी। तब-तक बाहर से रत्ती हाथ में एक लिफाफा लिए, दौड़ी हुई आयी—"बुआ लखनऊ से आनन्द बाबू की चिट्ठी !"

"सच ! देखें !!" सुभागी को जैसे, क्षण भर के लिए सारा दर्द भूल गया।

"हाँ, हाँ,...सुभागी को दे दे न !" बुआ ने कहा, "मैं चौके में हूँ;

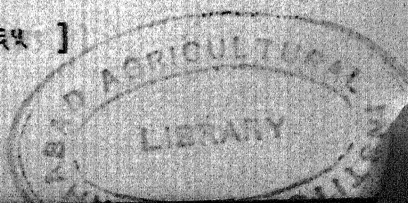
उसी को दे दे,...वह पढ़ देगी !

"अब तो सर-दर्द अच्छा हो जायगा न !" रत्ती ने सुभागी को चिट्ठी देते हुए कहा। और वह आँखों में शरारत लिए हुए उस से सट-कर बैठ गयी।

सुभागी ने प्यार से उस की पीठ पर चपत-सी लगादी और वह खत खोलने लगी। इस बार आनन्द ने बुआ के खत के साथ सुभागी को भी एक अलग खत लिखा था और दोनों में उस के आने की तारीख लिखी थी !

रात को सुभागी अपने घर गयी और खा पी कर वह अपनी खाट पर लेटी; तब उसे लगा; जैसे कहीं से फलों की ताजी सुगन्धि उस के भीतर फैलती जा रही है और उस का दर्द से घूमता हुआ माथा धीरे-धीरे हल्का होता जा रहा है; और उसे लग रहा था जैसे, कोई उस के जलते हुए माथे पर चन्दन की तरह नर्म और शीतल हथेलियाँ रख कर उसे सुला रहा है !

थोड़ी देर के बाद सुभागी सो गयी। और वह यह स्वप्न देखने लगी। लम्बा, बहुत काला-डरावना साँप है। सुभागी उसे बहुत मारती है, लेकिन वह मरता ही नहीं, न वह सुभागी को काटता ही है। जब वह मारते-मारते थक कर चूर हो जाती है, तब वह विषैला साँप, उस के पैर से ऊपर चढ़ता हुआ, गले तक चला जाता है और उस के गले में वह हार की तरह पहन उठता है और वह छटपटाती हुई रोने लगती है। फिर घोड़े पर चढ़ा हुआ एक राजकुमार आता है। उस के मुकुट में मोर के पंख लगे हुए हैं और उस के पीछे-पीछे तमाम मोर नाच रहे हैं। राज कुमार पास आता है। चुपके से साँप उस के गले को छोड़ कर कहीं खिसक जाता है। मोर नाचते ही रह जाते हैं और राज कुमार चुपके, वहाँ से भाग जाता है।



उस शाम को आनन्द के आने की तिथि थी। सुबह से ही सुभागी के मन में एक अजीब-सी घबड़ाहट हो रही थी। किसी भी काम में उस का पूरा मन नहीं लग रहा था। सुबह से शाम तक उस ने आनन्द के चित्र को तीन बार देखा था।

संध्या बीत गयी। सुभागी चौके में थी। एकाएक उसे लगा कि बाहर कोई आ गया। वह झट बाहर दौड़ी, उसे अपने पर ग्लानि हुई, वह लौट आयी—'क्या हो गया है मुझे!......मुझे ऐसा नहीं चाहिए.... मुझे तो कहीं अंधकार में छिप जाना चाहिए। रोती रहना चाहिए; उन्हें सुधि होगी तो मुझे ढूढ़ेंगे; फिर मैं देखूँगी वे मुझे रोने से मना करते हैं या नहीं।'

चौके में सुभागी की आँखें आँसुओं से भरी हुई थीं। पारो बुआ बाहर दरवाजे की देहरी पर खड़ी-खड़ी आनन्द के आने की बाट जोह रही थी। रत्ती आँगन में थी। तहसीलदार साहब कहीं घूमने गए थे।

सहसा बाहर से बुआ की आवाज़ आयी कि वे आ गए। सुभागी चौके से उठी और पास के अँधेरे कमरे में जा छिपी।

"और सुभागी कहाँ है!" आँगन में पैर रखते ही आनन्द ने बुआ से पूछा। रत्ती सुभागी को पुकारने लगी।

परन्तु सुभागी सब देखती हुई, सब सुनती हुई, कमरे के अंधकार में छिपी चुपचाप खड़ी थी। वह आँसुओं के बीच से आँगन में कुर्सी के पास खड़े हुए आनन्द को देख रही थी।

"नहीं मिली वह!" आनन्द से फिर पूछा।

"वह लाज के मारे कहीं छिपी होगी।" यह कह कर बुआ ने लालटेन ली और बरामदे में बढ़ती हुई वह कहने लगी, 'अरे सुग्गी!

कहाँ छिप गई तू !...अब तक तो अपने नन्नू को देखने के लिए जान दे रही थी।"

बुआ ने उस कमरे में प्रवेश किया । सुभागी दीवार से अपना मुँह छिपाए निःशब्द खड़ी-खड़ी रो रही थी।

"अरे ! तू...यहाँ खड़ी-खड़ी रो रही है !"

बुआ हैरान हो गयी । तब तक आनन्द ने पास से ही धीरे से पुकारा—"सुभागी !"

और वर्षों का पुल अपने नए निर्माण के लिए एकाएक टूट गया। सुभागी आनन्द के पैरों से लिपट गयी, और अपनी पूर्ण चेतना में वह तब आयी; जब उसे अपनी नंगी पोठ पर ही आनन्द के हाथ की स्नेह-साँत्वना भरी थपथपाहट महसूस हुई ।

सुभागी ने झट से अपनी कमीज पहनी। स्टोव जलाया, और चाय बनाने लगी। आनन्द आँगन में कुर्सी पर बैठा हुआ सुभागी के विषय में पूछता जा रहा था, बुआ उसे बताती जा रही थी। बीच-बीच में रत्ती भी बोल उठती थी। लेकिन सुभागी चुपचाप चाय बना रही थी।

आनन्द चाय पीता हुआ सुभागी को वहाँ से हटा कर, उसे विगत में ले जा कर देख रहा था। सुभागी सात वर्ष की है। झबरे-झबरे उस के बाल हैं। गोरा-सा लम्बा मुह है। बड़ी-बड़ी स्वच्छ आँखें हैं। वह माता जी की गोद में बैठी है। जमुना खाना बना रही है।

माता जी गाकर कहती हैं—

'जे रघुवीर चरन अनुरागे, तिन्ह सब भोग रोग सम त्यागे।'

सुभागी उसी गीत को तुतला कर गाती है—

'जे लघुवील चलन अनुलागे; तिन्ह सब भोग लोग छम त्यागे !

पास ही आँगन में गेंद खेलता हुआ एक आठ वर्ष का लड़का

दौड़ता हुआ आता है और सुभागी के उस झबरे-झबरे बालों को पकड़ कर झकझोर देता है—

'लखुवील लखुवील क्यों कहतीं हो रघुवीर कहो !'

बच्ची रो देती है। बालक तेजी से भागता है। माता जी उसे खदेड़कर पकड़ लेती हैं; फिर बालक बच्ची से क्षमा प्रार्थी होता है।

और आज आँगन में बैठे हुए आनन्द को लगा, जैसे वह गेंद खेलता हुआ बालक आज की सुभागी के सामने खड़ा है। लेकिन अब उसे क्या हो गया, वह तो आज कुछ बोल ही नहीं रही है। बुआ और रत्ती उस की ओर से बोल रही हैं !

रात को जब, सब लोग खा-पी चुके और सुभागी अब तक बिना कुछ बोले अपने घर जाने लगी, तब आनन्द ने विनय से कहा, "मैं तुम्हारे घर चल सकता हूँ।"

सुभागी कुछ बोली नहीं। उस ने एक क्षण आनन्द की आँखों में देखा, फिर दृष्टि नीचे कर ली और वह खड़ी रह गयी।

आनन्द आगे-आगे चलने लगा और छाया की भाँति सुभागी-पीछे-पीछे। सड़क पर आते-आते वह आनन्द के बाएँ चलने लगी और उसे लिए हुए वह अपने घर पहुँच गयी।

कमरे में एक मैला-सा चिराग़ जल रहा था। मच्छरों से बचने के लिए रामानन्द अपने को सर से पाँव तक ढके हुए लेटा पड़ा था। आहट पाते ही रामानन्द ने अपना मुँह खोला।

"यही वे बाबू हैं, "सुभागी ने टूटते स्वर में कहा, "और यही मेरे.......।"

सुभागी अपने को सम्हालती हुई वहाँ से हट गयी। रामानन्द के मुख पर प्रसन्नता थी और उस की आँखें भगी हुई थीं। आनन्द उसे देखता हुआ चुप खड़ा था। कहीं अंधकार से सुभागी के सिसकने की

आवाज़ आ रही थी। लग रहा था; जैसे अपने जन्म भर का उलाहना, घायल हृदय और वीरान आँखों में संचित सब आँसुओं को वह आज ही रो कर बहा देना चाहती थी। वर्षों से उस को इस भाँति रोने की अमित अभिलाषा थी।

"अरे सुभागी !" रामानन्द ने पुकारा, "बाबू को कहीं बैठाओगी कि रोती रहोगी।"

सुभागी अपना बक्स ले आयी और उस ने आनन्द के पास रख दिया।

आनन्द बैठ कर रामानन्द से बातें करने लगा। सुभागी वहाँ से मुड़ी और चूल्हा जलाने लगी। थोड़ी देर के बाद वह एक गिलास में चाय लिए हुए लौटी। गिलास जल रहा था। सुभागी उसे अपने आँचल के छोर से पकड़े थी। वह उसी तरह आनन्द को गिलास पकड़ाने लगी।

"यह क्या ?" आनन्द ने पूछा।

"यह हमारी चाय है !" सुभागी ने आँचल में सम्हलते हुए गिलास को उसे साग्रह पकड़ा दिया और वह खड़ी रही।

"सुख से थे न बाबू !" सुभागी ने गिलास लेते हुए पूछा।

स्वीकृति में आनन्द ने सर हिलाया और वह नीचे देखने लगा।

"क्या पता था कि फिर भेंट होगी !" सुभागी ने वेदना से कहा, "और इस दशा में भेंट होगी !"

आनन्द ने प्रश्न भरी दृष्टि से सुभागी को देखा; कुछ बोला नहीं।

"वंती जीजी के स्वर्गवास के बाद हमारी कौन खोज करता !" यह कह कर सुभागी कुछ क्षण चुपचाप खड़ी रही; फिर चौके में चली गयी।

रामानन्द ने धीरे-धीरे जमुना कीबात, सुभागी और अपने विवाह

की बात, अपनी गृहस्थी और अपने रोग की बात, सिकन्दरपुर की विपत्तियों और उसे छोड़ कर रामनगर आने तक की बात आनन्द को सुना दी। उसी समय सुभागी आयी। उस के मुख पर एक ऐसी आभा उभर आयी थी; जो मुस्कान के समय उभरती है।

उस ने बच्चों की भाँति कहा, "छोड़ो भी इन बातों को; चलो आज मेरे बाबू के सँग चौके में खाना खाओ!"

आनन्द सुभागी के सामने अपने को उस बच्चे की तरह पा रहा था; जिस ने अपनी माँ के प्रति कोई बहुत बड़ा अपराध किया हो और उसे अब संतुष्ट करने के लिए वह अपने सारे दुराग्रह को पी कर, माँ के किसी भी संकेत को पालन करने में, अपने को धन्य समझ रहा हो।

केवल दाल-चावल का भोजन था। सब ने खाया। रात काफी बीत चुकी थी।

रामानन्द लँगड़ाता हुआ आनन्द को घर से बाहर तक छोड़ने आया। और सुभागी उसे हवेली तक छोड़ने आयी। अंत में आनन्द भी न माना। वह सुभागी को उस के घर तक छोड़ने आया। आने-जाने तक के क्षणों में दोनो चुप थे।

"तू ने अपने मुँह से मुझे कुछ भी न बताया," आनन्द ने स्नेह से कहा, "लेकिन तुम्हारे विषय में मैं ने सब कुछ जान लिया!"

"सच,!.........सुभागी सर झुकाए खड़ी थी, "अभी सब कहाँ जाना है बाबू, अभी तो......।" फिर वह रो पड़ी। जल्दी से आनन्द को बिदा दी और अपने घर चली गयी।

आँगन में लालटेन जल रही थी। बुआ और आनन्द भोजन कर

के कुर्सी पर बैठे हुए बातें कर रहे थे। तहसीलदार साहब टहल कर देर से लौटे थे।

सुभागी भोजन की थाली लिए हुए तहसीलदार साहब के कमरे में गयी। उन्होंने पूर्वग्रह से सुभागी को देखा। वह झुक कर मेज पर थाली रख रही थी। तब तक उन्होंने आवेश में थाली को हाथ से झटक दिया। थाली झनझना कर फर्श पर टूट गयी और उस के बीच से तहसीलदार साहब की डाँटती हुई आवाज़ उभरने लगी, "मैं ने लाख बार समझाया कि जरा सफाई से खाना बनाया करो। अगर तुझे कपड़ा ही पहन कर खाना बनाना है तो मेरा सिलाया हुआ ब्लाउज़ तू क्यों नहीं पहनती ?"

अभियोगी की भाँति सुभागी डरी हुई चुप खड़ी थी। बुआ ने कमरे में प्रवेश करते ही कहा, "इसे वह ब्लाउज़ पसन्द नहीं है, मैं इसे कल दूसरा ब्लाउज़ सिल दूँगी !"

सुभागी ने बैठ कर टूटी-थाली में बिखरे हुए भोजन को सम्हाला और वह चुपचाप बाहर चली गयी।

आनन्द आँगन में बैठा देखता रहा। सुभागी ने अपने कपड़े बदले। फिर से वह चौके में गयी। और दुबारा वह भोजन बनाने बैठी। आनन्द के सामने सुभागी की बात एक दीवार की तरह शून्य में खिंच गयी—'अभी सब कहाँ जाना बाबू !'

रात के ग्यारह बजे। सुभागी ने दुबारा, नया भोजन थाली में सजाया और उसे लिए हुए वह तहसीलदार साहब के कमरे में गयी। कमरा खाली था। मेज पर एक बोतल और खाली गिलास रक्खा था। कमरे का पिछला दरवाजा खुला था। सुभागी एक क्षण कमरे में खड़ी रही। फिर उस ने मेज़ पर थाली रख दी और पिछले दरवाजे से वह बाहरी कमरे को पार करती हुई दरवाजे पर गयी। तहसीलदार साहब

बाहर टहलते हुए सिगरेट पी रहे थे।

सुभागी ने भोजन के लिए उन्हें बुलाया। वे कमरे में आ कर भोजन करने के लिए बैठे।

"बोतल और गिलास को उस बक्स में रख दो !"

सुभागी ने उन की आज्ञा पालन की। और कमरे से वह बाहर जाने लगी।

"रुको" उन्होंने कहा। सुभागी रुक गयी, लेकिन उस का मुख सीधे दीवार की तरफ था।

"मेरी तरफ देखो," उन्होंने खाते हुए कहा, और सुभागी को सीधे उन के सामने खड़ा होना पड़ा।

सुभागी ने अपने बँधे आँचल के नीचे दोनो हाथ डाल रक्खे थे। तहसीलदार साहब की पैनी दृष्टि उस के आँचल पर दौड़ी, लेकिन कहीं से भी वह दृष्टि आँचल के भीतर प्रविष्ठ न हो सकी। जैसे, उस दृष्टि के जो हाथ थे, उन को सुभागी के आँचल के नीचे के हाथों ने तोड़ दिया था। अतएव उन की दृष्टि उस के आँचल के ऊपरी सतह से ही फ़िसल कर नीचे झुक गई—सुभागी के पैरों पर।

वे कहने लगे, "भोजन में सफाई का विशेष स्थान है, फिर तो तुम ब्राह्मण हो।...बुरा तो नहीं मान गई। खुश-नाखुश अपने से ही हुआ जाता है......ठीक है न !"

सुभागी कमरे से बाहर जाने लगी। तहसीलदार साहब ने उसे टोकते हुए फिर कहा, "तू जा रही है सुभागी......ओह...ठीक है, अभी तुझे अपना खाना बनाना होगा न ! लेकिन हाँ,.....एक बात तो सुन !"

सुभागी कमरे के दरवाजे पर खड़ी हो गई। उन्होंने बताया "कल शाम को रामानन्द को खिलापिला कर आना। रात को तुझे यहीं रहना

होगा। रत्ती कल गाँव जा रही है; परसों तक आ जायगी। नहीं तो रात को प्यास वगैरह लगने पर पानी तक नहीं मिलेगा...समझी !"

सुभागी घर जाने के लिए आँगन में खड़ी हुई। आनन्द आँगन में टहल रहा था। रत्ती नल से पानी खींच रही थी।

आनन्द रत्ती के पास गया और उस ने पूछा, "कल तू अपने घर जा रही है ?"

"हाँ बाबू, साहब ने खुद मुझे छुट्टी दी है," रत्ती ने बचपने के भाव से कहा, "साहब ने कहा, जा रत्ती, कल तू अपने घर घूम आ !"

आनन्द चुप खड़ा था।

"क्यों बाबू क्या बात है," रत्ती ने अपना काम समाप्त करते हुए कहा, "कोई काम हो तो मैं न जाऊँ, यहाँ से अच्छा मेरा घर थोड़े है।"

"ठीक है, कुछ नहीं, वैसे ही मैंने पूछा।"

सुभागी के साथ आनन्द उस के घर आया। तब तक रामानन्द सो गया था।

"आज तो बहुत देर हो गयी !" आनन्द ने चिन्ता से कहा।

"कोई नयी बात नहीं !"

यह कह कर सुभागी चौके में गयी और आग जलाने लगी। आनन्द भी चौके ही में बैठा। सुभागी आटा गूँथने लगी। आनन्द आलू काटने लगा। आज की घटना के प्रकाश में आनन्द बातें करता रहा, पूछता रहा और सुभागी बताती भी रही।

रोटी सेंक चुकने के बाद; सुभागी ने एक गहरी दृष्टि से आनन्द को देखा और उस से कहा, "छोड़ो इन बातों को ! इन से तो मेरा कलेजा झाँझर हो गया...सच, क्या बताऊँ !"

"तो !" आनन्द ने पूछा।

"कोई ऐसी बात करो बाबू ! जिस से मुझे हँसी आ जाए," सुभागी ने दीनता से कहा. "नहीं तो मुझे हँसना भी भूल जायगा !"

आनन्द की आँखों में आँसू उमड़ आए।

"न जाने कितने दिन हुए, उन्होंने एक दिन कहा था, 'सुभागी ! कभी-कभी गीत गा लिया करो, नहीं तो तुझे सब गीत भूल जाएँगे... और जब तुझे गीत भूल जाएँगे...तब तुम तब तुम !'"

इतना कहते-कहते सुभागी के मुँह पर जैसे, उस के हृदय का सारा रक्त उमड़ आया और उस के सामने रामानन्द की वह वर्षों पुरानी तस्वीर आ गयी; जब उस ने यह कहा था और उस का मुँह इसी तरह एकाएक सुर्ख हो गया था।

"तब तुम...तब तुम क्या !" आनन्द ने पूछा।

"कुछ नहीं; इतना ही उन्होंने कहा था," सुभागी ने अपने मुँह को आँचल से पोछते हुए बताया, "और उन की बात सच निकली, आज मुझे सब गीत भूल गए !"

"लेकिन तुम हँसी नहीं भूल सकती !"

"क्यों !"

"क्योंकि तुम रोती जो हो," ! आनन्द ने थोड़ा रुकते हुए गंभीरता से कहा, "ईश्वर ने जब मनुष्य को बनाया, तब वह ईश्वर के सामने आ कर हँसने लगा। ईश्वर घबड़ा गया, अरे यह तो हँसता है। तब उस ने मनुष्य को तत्काल रोने का भी अभिशाप दे दिया !"

बीच ही में सुभागी को हँसी आ गयी।

आनन्द मुस्कराते हुए कहने लगा, "समूची सृष्टि में मनुष्य को छोड़ कर और कोई नहीं रोता, इसलिए उसी को हँसी की जरूरत है, शेष को नहीं ! जो रोता है; उसे ही जिन्दा रहने के लिए हँसी चाहिए !"

अगले दिन रत्ती अपने गाँव चली गयी। उस दिन सुभागी को

बर्तन धोने से ले कर भोजन बनाने, बिस्तर लगाने और तहसीलदार साहब को खिलाने तक का काम करना पड़ा। जैसा कि तहसीलदार साहब ने कहा था, सुभागी को इतनी फुर्सत ही न मिली कि वह शाम को रामानन्द को खिला कर आए।

रात के बारह बज रहे थे। हवेली में सब अपने-अपने कमरे में सो गए थे। लेकिन आनन्द को, अब तक नींद न आयी थी। उस की बंद आँखों में धुँधले-धुँधले बादल जैसा कुछ फैल रहा था और उस बहते हुए धुँधलके में हरी-पीली, लाल, काली और कभी-कभी एक ही साथ सतरंगी रेखाओं के बीच वह देख रहा था, जैसे सुभागी बहुत तेजी से कहीं भाग रही है, उस के बिखरे हुए बाल हवा में फैले हैं और पीछे से उन बालों को पकड़े हुए कोई उसे घसीट रहा है।

सहसा कमरे से सुभागी को पुकारती हुई कामता प्रसाद की आवाज़ उभरी। आनन्द सुन कर भी चुप रहा। कई बार पुकारने के बाद वे कमरे से बाहर निकले, आँगन के बरामदे में आए, और एक कड़ी आवाज से उन्होंने फिर सुभागी को पुकारा।

आनन्द ने लालटेन की धीमी रोशनी को तेज की और उसे लिए हुए वह कमरे से बाहर निकला।

"कहिए क्या जरूरत है ?" आनन्द ने पास आ कर कहा, "पीने के लिए पानी दूँ !"

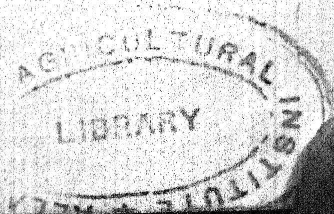
"सुभागी कहाँ है ?" तहसीलदार साहब के स्वर में एक विचित्र सा दबाव था।

"वह तो घर गयी !"

"क्यों ?......कैसे गयी वह घर, किसकी इजाजत से गयी ?"

"आप को सब मालूम है !" आनन्द ने धीरे से कहा।

तहसीलदार साहब ने आग्नेय दृष्टि से उस की ओर देखा।



"लेकिन कुछ काम तो बताइए," आनन्द ने आदर से कहा, "मैं तो हूँ ही।"

"वह तो मुझे मालूम है कि तुम हो और चारों ओर हो," तहसीलदार साहब ने व्यंग्य को क्रोध में ढालते हुए कहा, "बेहया कहीं के! तुझे शर्म नहीं आती!......देख रहा हूँ, जब से लखनऊ से तू आया है.....।"

नींद से जग कर पारो बुआ पास आ गयी। उस ने एक क्षण तो दोनों को देखा, फिर पूछा, 'क्या हो रहा है यहाँ?"

"इन्हीं से पूछिए!" आनन्द ने कामता प्रसाद की ओर देख कर बुआ की ओर देखा। फिर उस ने दृष्टि नीचे गिरा ली।

"क्या बात हुई भइया?" बुआ ने पूछा।

"कुछ नहीं।" उन्होंने क्रोध से आनन्द की ओर देखा; न जाने किसे एक भद्दी-सी गाली दी और झटके से अपने कमरे को बंद कर लिया।

दोपहर को उन्होंने खाना नहीं खाया। रात को बुआ ने उन के लिए भोजन तैयार किया, उन्होंने उसे भी खाने से इनकार कर दिया। वे क्या चाहते थे, किस पर क्रोध था उन्हें; वे कुछ न बताते थे। बुआ मना कर हार गयी। उन के मित्र डाक्टर चड्ढा उन्हें मनाने आए; लेकिन उन्होंने किसी का न माना।

रात काफी बीत गयी थी, लेकिन अब तक किसी ने भोजन न किया था। सब उदास आँगन में बैठे थे। तहसीलदार साहब अपने कमरे में न जाने क्या पढ़ रहे थे।

"तो आप भी आज भोजन नहीं करेंगे!" जैसे रो कर सुभागी ने आनन्द से पूछा।

"अब तो जब वे भोजन करेंगे; तभी मैं कर पाऊँगा," आनन्द

ने संयत स्वर में कहा, "लेकिन अब तो तुम घर जाओ; रामानन्द रास्ता देख रहा होगा!"

सुभागी की आँखों में आँसुओं के बीच सहसा कुछ दीप्त हो उठा। वह झट से बुआ के कमरे में गयी। उस ने अपने कपड़े उतार कर तहसीलदार साहब के दिए हुए पेटीकोट, रंगीन साड़ी और ब्लाउज़ तीनों कपड़ों को क़रीने से पहना। चौके में आयी, भोजन की थाली सजा कर वह यंत्रवत कामता प्रसाद जी के कमरे में गयी। आँगन में बैठे हुए आनन्द, बुआ और रत्ती तीनों अपने-अपने में हतप्रभ-से थे। कान खड़े कर तीनों कमरे की ओर देख रहे थे और, जैसे वे क्षण गिनते जा रहे थे।

धीरे-धीरे वे क्षण लम्बे होते गए। कमरे से कोई आवाज़ न उठी। कुछ फूटा नहीं, गिर कर कुछ टूटा नहीं। आनन्द आँगन से बढ़ कर बरामदे में आया और उस ने पर्दे के किनारे से देखा। वे प्रसन्नता से भोजन कर रहे थे। सुभागी सामने जैसे, जकड़ी हुई खड़ी थी। उन की आँखें उठती, सुभागी पर टिक जातीं; फिर उसी दृष्टि की प्रतिक्रिया उन की आँखों में होती और ओठों पर उन की रेखाएँ उभर जातीं।

आनन्द आँगन में लौट कर टहलने लगा। कुछ देर के बाद वह दरवाज़े पर चला गया और सहन में बेमतलब घूमता रहा।

आधे घंटे के बाद जब वह भीतर लौटा, उसे पता चला कि सुभागी अपने घर चली गयी। आनन्द उसी पाँव सुभागी के घर गया। प्रवेश करते ही, उस ने देखा, रामानन्द दीवार के सहारे, खाट पर बैठा है और सुभागी उस के पायताने मुँह के बल लेटी पड़ी है। रामानन्द अपने बायें हाथ से, उस के बिखरे हुए बालों को सर-पर सँवार कर उसे सावधानी से आँचल से ढक रहा था।

आनन्द चुपचाप कमरे में आ कर खड़ा हो गया। रामानन्द उसे देख कर स्वागत के भाव से इतना भर गया कि वह बिना कुछ बोले

खाट से उठने का प्रयत्न करने लगा। आनन्द ने बढ़ कर उसे उठने से रोक लिया, तब रामानन्द ने सुभागी को जैसे, जगाते हुए कहा, "सुभागी ! उठ देख, आनन्द बाबू आए हैं !"

सुभागी चौंक कर, बहुत तेज़ी से उठी और चीख कर रोते हुए उस ने कहा, "मैं ने लाख बार तुम से मना किया, तुम मुझे सुभागी न कहा करो !"

"फिर क्या कहूँ !" रामानन्द के भी स्वर में दीनता का स्पष्ट रुदन था।

"बिपती,...मुझे बिपती कह कर पुकारो," सुभागी अपने सहज रुदन को रोकने का प्रयत्न करती हुई कहने लगी, "मेरी माँ ने मेरा नाम बिपती रक्खा था,...वंती माँ ने मेरा नाम सुभागी रक्खा था....! अब मुझे कोई सुभागी न कहे !"

आत्मा के उसी आवेश में सुभागी ने अपना सर सामने दीवार से दे मारा। रामानन्द चीख पड़ा। आनन्द ने बढ़ कर उसे बाहुओं से पकड़ लिया, "यह क्या कर रही हो तुम !"

सुभागी का रुदन टूट चुका था; यद्यपि उस का मुँह आँसुओं से भीगा था। आँखें शान्त, लेकिन निस्तेज, निःस्पन्द हो रही थीं, जैसे, मन का तूफ़ान थम गया था और वह निश्चेष्ट कहीं से धीरे-धीरे पृथ्वी पर उतर रही थी।

आनन्द अकेले चौके में गया, वहाँ कुछ न था, जलाने तक की लकड़ी न थी।

वह घर से निकल कर बाजार की ओर बढ़ने लगा। सुभागी ने दौड़ कर, पीछे से, उस का दाँया हाथ पकड़ कर रोक लिया। बिना कुछ बोले, वह उसी तरह अपने दरवाजे पर लौट आयी। बरामदे में गयी; फिर वह खड़ी हुई, और आनन्द ने उसे देखा। वह काँप गया।

सुभागी के माथे पर, ठीक बीचो-बीच गोलाई में सूज आया था।

"यह क्या किया तूने!" आनन्द ने अपनी दाँयी हथेली से उसे ढक लिया।

"तब तूने वह क्यों कहा?" आँसुओं से सुभागी का गला फिर रुँध गया।

"क्या कहा?"

"क्या कहा! क्या कहा!!" बच्चों की तरह क्रोध दिखाती हुई सुभागी ने कहा, "जैसे भूल गए; कहा नहीं कि, 'अब तो जब वे भोजन करेंगे, तभी मैं कर पाऊँगा!' नहीं कहा था!"

"क्या बच्चों की तरह बात करती हो," आनन्द ने कहा, "तो क्या हो गया इस से?"

"कुछ नहीं!.........लोगों के लिए तो इतना ही हुआ कि उन्होंने भोजन कर लिया। लेकिन क्यों कर लिया?...इसे मैं ही जानूँगी!" सुभागी टूटते स्वर में कहती जा रही थी, "वे जीते, मैं हार गयी। खाना खा कर उन्होंने थाली ही में हाथ धोया और मेरे ही आँचल में उन्होंने मुस्कराते हुए अपना हाथ पोंछा। वे रोज तो मुझे देखते ही थे। आज उन्होंने ब्लाउज़ की तारीफ करते हुए मुझे छुआ भी।"

यह कहते-कहते सुभागी ने अपना मुँह आनन्द के सीने में गड़ा दिया। वह निस्तेज खड़ा रहा, जैसे उस के ऊपर बर्फ गिर रहा था।

"भोजन कर लिया!" सुभागी ने सिसकियों में पूछा, "बोलो! बोलते क्यों नहीं!"

'क्या बोलूँ.. बताओ!"

आनन्द कुछ देर तक निश्चेष्ट खड़ा रहा, फिर मुड़ते हुए उस ने कहा, "मैं अभी आया!"

कुछ ही क्षणों में आनन्द बाजार से लकड़ी, आटा-दाल-चावल

वगैरह लादे लौटा, और चौके में रखते हुए उस ने कहा, "भोजन कर लेना. और माथे की चोट पर हल्दी रख लेना !"

यह कह कर आनन्द बाहर जाने लगा। उस ने सुना, 'तब मैं कुछ नहीं करूँगी' और उसे लौट आना पड़ा।

आग जली। भोजन बना। आनन्द ने उस की चोट पर स्वयं पीस और गर्म कर हल्दी और प्याज रक्खी। और छुट्टी ले कर वह जाने लगा।

लेकिन जाते हुए आनन्द को देख कर वह फिर रोकती हुई कहने लगी, "मत जाओ, आज यहीं सो जाओ न ! यह भी तो घर है..... आज न जाने क्यों मुझे बहुत भय लग रहा है !"

"घबड़ाओ नहीं; रामानन्द तो यहाँ है ही !"

यह कह कर आनन्द बहुत तेजी से सड़क की ओर मुड़ा और तेज क़दमों से वह हवेली की ओर जाने लगा।

आनन्द हवेली के बरामदे में पहुँचा। चारों ओर सन्नाटा था। फिर उस की दृष्टि आँगन में घूमते हुए तहसीलदार साहब पर पड़ी। दोनो एक दूसरे को देख कर रुके और क्षण भर के बाद आनन्द अपने कमरे की ओर बढ़ने लगा।

"रुको !" तहसीलदार साहब ने आगे बढ़ते हुए कहा, "कहाँ थे अब तक ?"

"क्यों ?" आनन्द मुड़ कर खड़ा हो गया।

"रात के एक बज रहे हैं, और तुम यहाँ के तहसीलदार के लड़के हो !"

"मैं कुछ समझा नहीं।" आनन्द ने संयत स्वर से कहा।

"नालायक तुम समझोगे कैसे," क्रोध से उन्होंने कहा, "दिल और दिमाग पर तो कुछ और ही है।"

"आप चाहते क्या हैं ?" आनन्द की वाणी में क्षोभ स्पष्ट था।

"सुबह ही लखनऊ लौट जाओ ! तुम्हारे हक़ में यही अच्छा होगा।"

"और अगर न जा सकूँ तो ?"

"भूल गए अपनी हैसियत," वे आनन्द के पास पहुँच गए और दोनो हाथों से हवा को चीरते हुए उन्हों ने कहा, "लखनऊ रहते हो तो क्या ? एम० ए० पास कर लिया है तो क्या !...मारे जूतों के साले तुम्हारी खोपड़ी गंजी कर दूँगा।"

आनन्द चुप खड़ा था। तहसीलदार साहब की साँसें फूलने लगी थीं और वे कँपने लगे, "बेतों की मार भूल गयी !...वह बेंत मेरे पास अब भी है !"

यह कहते हुए वे तेजी से अपने कमरे में गए, बेंत ढूढ़ने लगे। आनन्द की एक इच्छा हुई कि वह बढ़ कर उस कमरे को बाहर से बंद कर ले और उन्हें कमरे के भीतर चिल्लाने के लिए छोड़ दे। लेकिन उस ने वैसा किया नहीं।

काँपते हुए कामता प्रसाद, स्थिर आनन्द के सामने खड़े हो गए।

"अब निकालो कोई उल्टी सीधी जबान। अब करो कोई गुस्ताखी !!"

"आप ही सब कर लीजिए !"

"आप ही कर लीजिए ! आप ही कर लीजिए !!" उन्हों ने व्यंग करते हुए कहा, "साले कल-कल के लौंडे ! सबक़ पढ़ाते हैं...हिलाओ कोई ज़बान ! चुप क्यों हो गए !......उस ने आज कोई खातिर नहीं की क्या !'

"किस ने !"

"तुम्हारी माँ ने और किस ने !"

आनन्द कँप गया और क्रोध से बेसुध हो गया। उस का दायाँ हाथ

उन के गले पर गया और बाएँ हाथ से उस ने उन की बेंत छीन ली। उन के गले से एक ऐसी चीख आयी, जैसे; कटघरे में बंद अकेली कोई बकरी चीखती है।

दौड़ी हुई बुआ आयी। रत्ती चिल्ला उठी। आनन्द के हाथों में वे गिड़गिड़ा रहे थे। एकाएक उस की दृष्टि बुआ पर पड़ी। फिर उस के भिंचे हुए हाथ ढीले पड़ गए। बेंत जमीन पर गिर पड़ी। तहसीलदार साहब ने उसे आवेश में उठा लिया और इतने जोर से उन्होंने आनन्द के सर पर मारा कि वह बुआ को लिए हुए एक क़दम आगे लड़खड़ा गया।

उस का सर फूट गया और खून को देख कर बुआ कुछ क्षणों के लिए बेहोश हो गयी। और जब उसे सुधि आयी, और उल्टे आनन्द की गोद में उस ने अपने सर को पाया, तब वह रोने लगी।

"अगर रोना है तो हवेली के बाहर जा कर रो आवो," तहसीलदार साहब ने कमरे के दरवाजे पर आ कर कहा, "तुम लोग मुझे सोने दोगे कि नहीं!"

आनन्द ने जब दृष्टि उठा कर दरवाजे पर देखा, उस समय वहाँ कोई न था। उस की आँखों में जैसे खून उबल रहा था और उस के बीच एक पूरी तस्वीर डोल रही थी।

कामता प्रसाद हाथ में बेंत ताने भयानक हँसी बिखेरता हुआ खड़ा है और उस के सामने बन्दी की तरह सर झुकाए खड़ी हैं—पारो बुआ, वंती जीजी, जमुना, सुभागी और प्रभा। पास ही रामानन्द, आनन्द के साथ खड़ा है और वे दोनों चुपचाप कातर दृष्टि से एक दूसरे को देख रहे हैं।

दूसरे दिन जब सुभागी, रामानन्द और बुआ तीनो आनन्द को घेर कर बैठे थे; तब भी वह उसी चित्र को बार-बार अपने सामने से गुजरता हुआ देख रहा था।

दोपहर का खाना बना कर सुभागी आनन्द के लिए थाली लगाने लगी। वह आँगन में रामानन्द के पास बैठा था और बुआ चौकी पर बैठी हुई अब दातून कर रही थी।

आनन्द जब चौके में बैठने लगा, उस के मुँह से एकाएक एक प्रश्न निकला—"तुम इस तरह यहाँ कब तक खाना बनाओगी ?"

"जब तक बाबू, आप यहाँ रहेंगे !" सुभागी ने सहज भाव से कहा और सारी वेदना उस की दृष्टि में उतर आयी।

आनन्द चौथी रात के भोर में रामनगर से लखनऊ जाने लगा। रात का बस, धुँधला-धुँधला अँधेरा शेष था। वह घोड़े पर चढ़ा हुआ सड़क से उत्तरी बाग में प्रवेश कर रहा था। लेकिन उसे लग रहा था जैसे, वह घोड़े की पीठ पर नहीं बैठा है; बल्कि खड़ा है और घोड़ा उस के सर पर अपनी चारों टापों से खड़ा है; और वह उस के बोझ को उठाये हुए धीरे-धीरे आगे बढ़ने के लिए छटपटा रहा है।

सहसा आनन्द की दृष्टि सामने गयी। वह घोड़े से उतरा। सरजू को उस ने रास थमा दी, और उसे आगे बढ़ चलने के लिए कहा।

रामानन्द कम्बल ओढ़े सड़क के किनारे बैठा था। सुभागी उस के सर पर हाथ रक्खे हुए खड़ी थी।

"यहाँ क्यों चले आए ?" आनन्द ने पास आते हुए कहा, "मैं तो स्वयं तुम्हारे घर गया था।"

दोनों खड़े हो गए। सुभागी कुछ न बोली। तब रामानन्द ने कहा, "आप तो हम लोगों से कल ही मिल आए थे। हम ने रो भी लिया था। आप ने यह भी कहा था कि आप आज के तड़के भोर में लखनऊ के लिए रवाना हो जाएँगे !"

"और मैंने यह भी तो कहा था," आनन्द ने गिरी हुई वाणी से कहा, "तुम सब घर ही पर रहना, मैं अकेले चला जाऊँगा। मुझे पहुँचाना या छोड़ना क्या?"

"सो तो ठीक है बाबू! लेकिन तबीयत न मानी!" रामानन्द ने सर झुका लिया, "हम लोग बाबू! दो घन्टे से यहीं बैठे हैं!"

सुभागी की खामोशी आनन्द के गले को सुखाती जा रही थी और उस के अन्तःक्षितिज पर कुछ अबाध गति से बरसता जा रहा था!

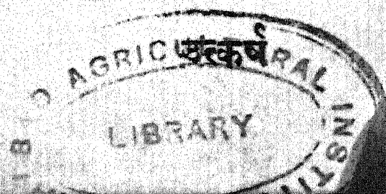
"अच्छा, नमस्ते! फिर भेंट होगी!"

तब सुभागी ने चौंक कर आनन्द को देखा-एक अजीब मुद्रा दृष्टि से। और आनन्द ने उसे देखा। उस क्षण सुभागी का निस्तेज मुख सफेद पड़ गया था। परन्तु अपनी निश्चेष्टता में, मूक मुद्रा में उसे सौ-सौ वाणी की शक्ति मिल गयी थी। आनन्द को लग रहा था, जैसे उस के चारों ओर असंख्य सुभागी उसी करुण मुद्रा में खड़ी हैं। और वह सब की वाणी सुन रहा है।

आनन्द ने फिर नमस्ते किया। फिर बिदा माँगी। सुभागी के बंदी, निस्तेज हाथ एक बार उस के आँचल के नीचे कँपे, पर उठ न सके। आनन्द चला गया। सुभागी वहीं खड़ी रही और उस की धुँधली दृष्टि में फिर वही स्वप्न चित्र उभरने लगा; जिसे सुभागी ने आनन्द के यहाँ आने से पूर्व देखा था—

विषैला साँप उस के गले में लटक उठता है। घोड़े पर चढ़ा हुआ एक राजकुमार आता है। उस के आगे-पीछे तमाम मोर नाच रहे हैं। राजकुमार उस के पास आता है। साँप भाग जाता है। मोर नाचते ही रह जाते हैं; लेकिन राजकुमार चला जाता है।

सुभागी ने मुड़ कर फिर सड़क की ओर देखा, रामनगर की ओर देखा और अन्त में उस की दृष्टि रामानन्द में एकीकृत हो गयी।



१३

मृत्यु का एक अदृश्य रूप है; उस की एक निश्चित अनुभूति है। इस पथ से मानव असंख्य वर्षों से चला जा रहा है फिर भी वे सब इस से अपरिचित हैं, जिन्हें जीवन से घृणा नहीं है। और जिन्हें जीवन से घृणा हो जाती है, उन के सामने से मृत्यु का पर्दा फट जाता है और वे अदृश्य मृत्यु को देख लेते हैं, उस का अनुभव पा जाते हैं। तब उन के सामने से मौत भागती है और जीवन उसे पकड़ने के लिए दिन-रात दौड़ता फिरता है। और जब दोनों थक जाते हैं; तब उन के लिए मौत भी मर जाती है। मौत पीछे छुट जाती है और जीवन आगे बढ़ जाता है। क्योंकि मृत्यु गन्तव्य है, रूढ़ि है, एक स्थिर सीमा है और जीवन एक गति है, दौड़ है, एक आकारहीन व्याकुल संकल्पना है।

सुभागी को अपने अंक में छिपाये हुए, आनन्द के दोनो हाथ अपने भावों में भिंचे थे। घर में चारो ओर निविड़ अंधकार था। एक

भयानक सन्नाटे में दोनों निबद्ध थे।

आनन्द ने चिराग जलाया। सुभागी के मुख को देखा। उस में कहीं से भी रुदन न था, कोई प्रेरणा या गति न थी। उस का पूरा चेहरा उसी तरह सफेद हो गया था, जिसे क्षण भर के लिए आनन्द ने तब उस भोर में देखा था, जब उस बार वह सुभागी से विदा ले कर लखनऊ जा रहा था। आँखें स्पष्ट कह रही थीं, कि मानवता से मेरा विश्वास टूट गया, जीवन एक भयानक झूठ है, घृणा है; मुझे यह नहीं चाहिए।

सुभागी की आँखें आनन्द ने एक बार तब देखी थीं, जब बाँसी में वह वंती जीजी के साथ थी। उन में तब जीवन की एक चंचल तरलता थी। उन आँखों में प्रतिज्ञा के स्वप्न थे, विश्वास के डोरे थे। दूसरी आँखें उस ने रामनगर में देखी थीं, रामानन्द के सामने। उन में तब संघर्ष के आँसू थे, विद्रोह था, आस्था थी। उन में एक ऐसे ज्वलित प्रकाश की लहरें थीं, जो धधकती हुई ज्वाला में होती हैं। लगता था, रामानन्द जलता हुआ कोई यज्ञ-कुंड है और सुभागी विश्वस्त, निश्चित मौन, अपलक दृष्टि से उसे देख रही है और भरी हुई आँखों में अच्छे भविष्य की प्रतीक्षा कर रही है। उन्हीं आँखों को आनन्द सिकन्दरपुर में देख रहा था। उन में अब कुछ न था। आँखें जैसे, बस केवल आकार थीं, मात्र बाह्य इन्द्रिय थीं और उन में सब कुछ टूट कर नष्ट हो गया था।

रामनगर से चल कर, किसी तरह ढूढ़ते-ढूढ़ते आनन्द जब सुभागी के उजड़े घर में प्रविष्ट हुआ, और सुभागी को पुकारा, उसे कोई उत्तर न मिला था। कुछ क्षणों के बाद उस ने देखा था कि किसी ने डर

से चीख कर पास वाले कमरे को भीतर से एकाएक बन्द कर लिया था।

"मैं आनन्द हूँ सुभागी !"

इस तरह आनन्द ने कई बार कहा था लेकिन वह चुप थी। आनन्द को अपनी बाहों में जकड़े हुए वह निश्चेष्ट पलकों से उसे तक रही थी।

खाली घड़ा लिए हुए आनन्द कुएँ पर गया। उस के पास डोर न थी। घड़ा रख कर वह मिसरी गोसाईं के घर की ओर मुड़ा, तब तक उस ने देखा, कोई औरत घड़ा-डोर लिए कुएँ पर आ रही थी।

"के कर पहुना हया भइया !" औरत ने डोर देते हुए आनन्द से पूछा।

"सुभागी का.....क्यों ?"

"पुनि वोकरे घड़ा कै पानी पीयब भइया !"

"क्यों क्या बात है ?"

"जा भइया ! जे अपने पति कै जहर दै के मार डालिस, आप वो कर बात चलाइथै....राम-राम... छिः...छिः !"

आनन्द ने घड़ा भर लिया, डोर को दाएँ हाथ में बटोरा और क्रोध से उस ने औरत की ओर फेंक दिया। औरत झुँझला कर बड़बड़ायी। आनन्द घड़ा लिए हुए चला गया।

सुभागी लगातार दो गिलास पानी पी गयी, फिर उस ने आँखें मूँद ली और थोड़ी ही देर के बाद वह सो गयी। आनन्द फिर मिसरी गोसाईं के घर गया और उन के साथ वह कुछ सीधा-पिसान, लकड़ी-तेल वगैरह लिए वापस लौटा।

चौके में उस ने दूसरा चिराग जलाया। चूल्हा फूटा हुआ था। दो कच्चे ईंटों के बीच शायद किसी ने कल-परसों आग जलायी

थी; और वह उसी तरह पड़ा था। उसी पर दो ईंटें और जोड़ कर आनन्द भोजन बनाने की तैयारी करने लगा। मिसरी गोसाईं उस की सहायता में पास ही बैठे थे।

"इस तरह से तो सुभागी आज ही कल में मर गयी होती," आनन्द ने कहा, और चौके में से वह निराश गोसाईं की ओर देखने लगा।

"बबुआ मैं क्या करता," उन्हों ने उत्तर दिया, "ये किसी तरह मानती ही न थीं, न दाना न पानी, कहती थीं, मुझे इसी तरह रहने दो, मेरे घर में कोई मत आए, मुझे डाँट बैठीं, फिर मैं क्या करता बबुआ!"

"और यातना दो! और सताओ!!" आनन्द ने धीरे से मंत्र की तरह कहा और वह चूल्हे की आग देखता रहा!

"बबुआ! मुझे भी क्या छोड़ा इन गाँव वालों ने," गोसाईं कहने लगे, "दो बीघे धान की हरी फसल काट गिरायी। मेरा पुआल फूँक दिया; किसी से कुछ रोता था, उलाहना देता था, उल्टे सभी ताने सुनाते थे कि तब तो खूब अच्छा लगा, मुफ्त में सुभागी का घर-द्वार खेती-बारी लेते हुए, और गाँव भर से खिलाफ चल कर उस का साथ देते हुए, अब उसी को बुलाओ न; कहाँ तक बताऊँ बबुआ! मेरी गति बना दी इन सिकन्दरपुर वालों ने।"

"और आप उन की चुपचाप सहते गए?" आनन्द ने पूछा।

"और क्या करता बबुआ!" उन्होंने बताया, "चुप रहने पर तो खूंटे पर से ये गाँव वाले मेरे बैल खोल देते थे, और खेत में पड़ते ही लाठी लेकर गालियाँ देते हुए दरवाजे पर पिल आते थे क्या-क्या रोऊँ बाबू! वह कितना अभागा है, जो गाँव में रहता है!"

"तुम अभागे नहीं हो गोसाँई, ये गाँव अभागे हैं।" गोसाँई

चुप थे।

आनन्द चुप रहा। चूल्हे की आग के सामने उस का चेहरा पूर्णतः तमतमाया हुआ था। पूरे शरीर पर, जैसे नन्ही-नन्ही चींटियाँ रेंग रही थीं।

थाली में खाना परोस कर आनन्द सुभागी के पास गया। उसे जगाया, हाथ मुँह धुलाया और धीरे-धीरे उसे भोजन कराने लगा।

थोड़ा-सा ही भोजन करने के बाद; सुभागी ने फिर एक गिलास पानी पिया और तुरन्त पेट थाम कर वह कराहने लगी।

पेट के दर्द से वह अंधी होने लगी। आनन्द कपड़े से सेंकने लगा और धीरे-धीरे उस की कराह में शान्ति आने लगी। फिर कुछ देर के बाद आनन्द ने देखा, सुभागी की निस्तेज आँखें आँसुओं से भरती जा रही थीं।

अँधेरी रात थी। बाहर वातावरण में सन्नाटा था। लेकिन घर के वातावरण में, झींगुर, करकच्ची, मच्छर और सुराख बेवारों में बसे हुए कनतूतुर और मेढक; सब अपनी-अपनी आवाजों से घर को भयानक बना रहे थे। आँगन-बरामदे और खुले हुए कमरों में चमगीदड़ों के बच्चे उड़ रहे थे। और चारों ओर 'चींकी' 'चींकी' कर रहे थे। लगता था, सुभागी का वह घर, घर नहीं था; उस गाँव में नहीं था, बल्कि वह सदियों का उजड़ा हुआ एक ऐसा खंडहर था, जो किसी वीरान टीले पर खड़ा था।

सुभागी लेटी पड़ी थी, आनन्द सरहाने बैठा था। कमरे का चिराग मंद पड़ गया था। सुभागी ने अपना दायाँ हाथ उठाया, आनन्द ने उस में अपना दायाँ हाथ दे दिया। वह आनन्द का हाथ उसी तरह थामे रुकी रही, फिर उसे धीरे-धीरे अपनी पीठ पर ले गयी और वहीं उसे छोड़ दिया।

दो लम्बी-लम्बी रेखाओं में पीठ सूजी हुई थी। सुभागी कराह कर औंधी हो गयी और उस ने फिर आनन्द के बाएँ हाथ को पकड़ा और उसे अपनी दायीं बाँह पर ले जा कर उस ने छोड़ दिया। वहाँ भी एक गोल सूजन थी।

यह सब तो वाह्य था, यह सब तहसीलदार और गाँव की आत्मा के साक्षी थे। और अन्तर में कितना था, कितने घाव थे?

आनन्द द्रष्टा की तरह सोचता रहा। उस की दृष्टि, सूने कमरे में चक्कर काटते हुए नन्हें चमगीदड़ के साथ दौड़ रही थी। वह उड़ता रहता, बार-बार सामने की दीवार से जैसे, टकराता रहता, लेकिन फिर भी उस के नन्हें पर चक्कर काटते रहते। कमरे के कोनों में मकड़ी के घने जाले से वह लिपटता गया। फिर भी वह उड़ता रहा, चक्कर काटता रहा।

"बाबू!" सुभागी ने धीरे से पुकारा।

"हाँ, बोलो।"

सुभागी चुप हो गयी।

"कहो तो मैं इस गाँव में आग लगा दूँ!" आनन्द सुभागी को बाँह से थामे आवेश में कहने लगा, "रामनगर की हवेली फूँक दूँ, गला घोंट दूँ उन का......।"

"बाबू!" सूनी दृष्टि से देखती हुई सुभागी काँप गयी। और कोढ़ के अभिशाप की, माँ द्वारा दी गई व्याख्या उस के मस्तिष्क में कौंध गयी। उस ने रामानन्द को आग लगाने से रोका था... और आनन्द ...तो क्या आनन्द भी...। सुभागी की आँखें निःशब्द रोने लगीं।

आनन्द ने निमिष मात्र उस की आँखों की भयानक उदासी को देखा फिर उस के सर को उस ने अपने दामन में टेक लिया और सामने शून्य में देखता हुआ वह कहने लगा, "रोओ नहीं सुभागी!.....मैं

तुम्हारे एक-एक आँसू का प्रतिशोध ले सकता हूँ....लेकिन क्या इससे हमारी आत्मा को शान्ति मिल जायगी? हम पर किये गए अत्याचारों के घाव मिट जायँगे! पुरैना या सिकन्दरपुर अकेले ही गाँव तो नहीं हैं और इनके क्रूर-कठोर-संकुचित-स्वार्थी वासिन्दे और रामनगर के तहसीलदार तो अकेले विश्वासघाती नहीं; बल्कि यहाँ के सारे गाँव पुरैना-सिकन्दरपुर की तरह हैं—सब की आत्माएँ विषाक्त हैं। रामनगर भी असंख्य है....और तहसीलदार भी...रोओ नहीं सुभागी...धैर्य रक्खो...।"

आनन्द ने उस के खुले हुए सर को आँचल से ढक दिया, फिर उसे पहलू से लगाते हुए वह कहने लगा, "वे हमें न बदल सके, न मार सके, यही हमारा उन सब को जवाब है-प्रतिशोध है। और हमारा यही सात्त्विक प्रतिशोध उन्हें बदलने पर विवश करेगा। रोओ नहीं, मैं तुम्हारे साथ हूँ; जो बीत चुका, तुम्हें हमेशा उस से घृणा थी; जो अभी बीता है; उसे भी बीत चुकने दो। इन सब को अपने पथ पर छोड़ कर, उठो! हम आगे बढ़ चलें—एक नये जीवन में, एक नए संकल्प और भविष्य में.....।"

कुछ क्षण आनन्द चुपचाप उसी तरह शून्य में देखता हुआ अपने अंक से लगे हुए सुभागी के सर को सहलाता रहा, फिर उस ने धीरे से कहा, "सुभागी!...ओ सुभागी!...बोलो कुछ!!"

"क्या कह रहे हो!" सुभागी ने सिसकते हुए कहा!

"मैं अकेला नहीं कह रहा हूँ!" आनन्द उस की आँखों में देखता हुआ कहने लगा, "मेरे इस कहने और तुम्हारे सुनने के पीछे, जमुना, वंती जीजी, रामानन्द, सुभागी और आनन्द की शक्ति है, स्वप्न है, संकल्प है।"

चिराग बुझने जा रहाथा, शायद उस का तेल जल चुका था।

आनन्द उठा। कड़ुए तेल से भरी हुई कटोरी ही में उस ने एक नयी बत्ती बना कर डाल दी और उसे जला कर दूसरे ताक पर रख दिया।

बुझते हुए चिराग को उस ने उठाया, क्षण भर देखा और उसे नीचे जमीन पर लुढ़का दिया।

आनन्द सुभागी की खाट पर झुका हुआ उस की चोट सेंक रहा था। सुभागी औंधी लेटी थी और वह अपनी बायीं कनपटी पर सर मोड़ कर आँसुओं में डूबी हुई दायीं आँख से आनन्द को देख रही थी।

"मरते समय उन्हों ने कहा था," सुभागी कराहती हुई कहने लगी, "मुझे ईश्वर ने नहीं, तहसीलदार ने मारा......।"

"और !" आनन्द ने पूछा।

"और उन्हों ने कहा था कि तू न मरना सुभागी, नहीं तो हम लोगों का सत्य मर जायगा।"

आग के ऊपर गर्म तवे पर आनन्द कपड़े की पोटली रखे हुए उसे सेंक कर रहा था और उस का बाँया हाथ सुभागी के सर पर था।

आनन्द कमरे के सन्नाटे में, सामने दृष्टि गड़ाए अपने अन्तःक्षितिज में देख रहा था। दीवार पर सुहाग की फटी हुई चूनरी फैली है। ऊपर छत की मोटी शहतीर से तहसीलदार के दोनो पैर बँधे हैं और उन का मुँह नीचे शून्य में लटक रहा है। आँखें निकल आयी हैं, मुँह से लार टपक रहा है और उस के बीच से एक आर्त्त चीख उभर रही है, मुझे मत मारो; छोड़ दो मुझे ..छोड़ दो !!

"कहीं कुछ जल रहा है !" सुभागी ने झटके से सर उठाते हुए कहा। उस ने देखा, तवे की आँच पर आनन्द के हाथ की पोटली जलने लगी थी। सुभागी ने चीख कर उस की दायीं हथेली को खींच लिया। और उसे अपने अंक में छिपा लिया।

"हाथ जल गया न ?"